गहरे पानी पैठ

अयोध्याप्रसाद गोयलीय

●

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

गहरे पानी पैठ

* गुरुजनों के चरणों में बैठकर जो सुना
* इतिहास और धर्मग्रन्थों में जो पढ़ा
* और हिये की आँखों से जो देखा

अयोध्याप्रसाद गोयलीय

मेरे इनकार करनेपर बोला, "दिल्लीवाली शेखी तो रहने दे। डर मत, मैं माँगूँगा नहीं, तेरे लिए ही जोड़कर रखे हैं।"

न मालूम अपनी देहाती जबानमें बड़े भाई क्या-क्या बकते रहे; पर मैं उस समय अपने मनमें रो रहा था। बड़ी मुश्किलसे उनके रुपये लौटाये। नोट उन्होंने अण्टीमें लगा लिये; पर जिस उमंगसे वह मेरे पास आये थे, उस उमंगसे वापस नहीं गये। उनकी इस उदासीका कारण स्पष्ट था, पर मैं विवश था।

मुसीबतज़दासे मिलने, सहानुभूति प्रदर्शित करने तो बहुत आते हैं; पर बिहारीलाल-जैसे बिरले ही आते हैं। न मालूम अब बिहारीलाल कहाँ हैं। मुद्दतोंसे दर्शनों तकको भटक गया। आज पुरानी स्मृति उभर आनेपर दिलकी भड़ास क़ागज़पर ही बखेरकर पूरी कर रहा हूँ।

हंस, काशी; १९३२ ई०

द्वितीय संस्करण

प्रस्तुत पुस्तकके जो अंश गोयलीयजीके नाम या उपनाम (रामसरनात्मज या सैलानी नाम) से जिन पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित होते रहे हैं, इस संस्करणमें उनका नाम और लेखन-समय भी दे दिया गया है।

तृतीय संस्करण

कुछ कहानियोंके शीर्षक परिवर्तित किये हैं और यत्र-तत्र संशोधन भी किया है।

स्नेहमयी भाभी,

स्वप्नमें भी किसीको पीड़ा नहीं पहुँचायी, फिर भी आपदाओंके पहाड़ तुमपर टूट पड़े, इसे भाग्यकी विशेष अनुकम्पा ही समझना चाहिए, अन्यथा—

"किसको होती हैं अता इस शानकी बरबादियाँ"

ये दुःख हम सबकी जागीर हैं भाभी,

तुम्हें किस मुँहसे अपनी यह कृति भेंट करूँ—

"मेरे आँसू सही अनमोल मोती
तुम्हारे हारके क़ाबिल कहाँ हैं ?"

विषय-सूचा

गुरुजनोंके चरणोंमें बैठकर जो सुना

धर्म और इतिहास-ग्रन्थोंमें जो पढ़ा

हियेकी आँखोंसे जो देखा

एक डुबकी

जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ।
मैं बौरी ढूँढ़न गयी, रही किनारे बैठ॥

महात्मा कबीरका यह दोहा बहुत प्रसिद्ध है। अर्थ भी सीधा है, विद्यार्थियोंको केवल यह बताना पड़ता है कि 'बौरी' का अर्थ 'बावरी' या पगली है। इसके बाद विद्यार्थी बड़ी सरलतासे अर्थ कर देता है,

"जिसने खोजा, उसने गहरे पानीमें उतरकर ही पाया। मैं ऐसी पागल कि ढूँढ़ने गयी तो किनारेपर बैठ कर ही रह गयी।"

इस तरह उक्त दोहेका अर्थ तो शब्दोंके किनारेपर बैठकर झलक आता है, पर भाव समझनेके लिए इस ज्ञान-वापीमें गहरे उतरना पड़ता है। कबीरकी सारी जीवन-व्यापी साधनाका तत्त्व इस दोहेमें निहित है। कबीर, तत्त्वके जिस स्पष्ट दर्शन और गूढ़ बातको सादगीसे समझा देनेके लिए विख्यात हैं, उसका उदाहरण भी इस दोहेमें मिलता है। कबीर-का 'कवि' भी अपनी समस्त भावुकताके साथ दोहेके भावमें व्याप्त है। कबीरकी प्रणयाकुल आत्मा अपने प्रियतम, अपने भगवानकी खोजमें निकली तो दुनिया भरमें भटक आयी—घाट-घाटपर झाँक आयी पर प्रियतमकी प्राप्ति नहीं हुई। भगवान तो घटके अन्दर व्याप्त हैं, हृदयकी इस वापीमें बिना उतरे, बिना चूड़ान्त डूबे वह कहाँ मिलेंगे? भगवान तो शेषनागकी शय्यापर क्षीरसागरमें शयन करते हैं न? हाय, मैं कैसी बावली हूँ जो ऊपर-ही-ऊपर देखती रही, किनारे-ही-किनारे बैठी रही।

तात्पर्य यह, कि जितना सोचते जाइए, गहरे उतरते जाइए, उतना ही अर्थ और मर्म उजागर होता चला जायेगा। धर्म, कर्म, अध्ययन, भोग

और योग सबकी सफलताकी कुंजी और आदेश-वाक्य एक ही है—

"गहरे पानी पैठ।"

जब महात्मा कबीरने उक्त दोहेमें दूसरा पद 'गहरे पानी पैठ' डाला था तो उन्हें रहस्यवादी होते हुए भी यह क्या पता था कि प्रायः चार सौ वर्ष बाद गोयलीय नामका एक लेखक उनकी साधना और सिद्ध-भूमि काशीसे ऐसी पुस्तक प्रकाशित करेगा, जो उक्त पदके अमर तथ्यको पुस्तक-का शीर्षक बनाकर प्रचारित करेगा। श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीयने कबीर-के इस सूत्रको जीवनका सूत्रधार बनाया है, जो उनके जीवन और प्रयासको सार्थक बनाता है। उनको एक अत्यन्त सफल कृति 'शेर-ओ-शाइरी' के दो संस्करण हम ज्ञानपीठसे प्रकाशित कर चुके हैं। जहाँ 'शेर-ओ-शाइरी' में गोयलीयजीने विशाल उर्दू-साहित्यके सागरमें गहरे पैठकर गौहर निकाले थे, वहाँ 'गहरे पानी पैठ' में अनादि, अनन्त जीवनकी सागर-सरिताओंमें डूबकर और ग्रंथोंको मथकर उन्होंने कुछ रत्न निकाले हैं। इसमें मन्थनके रत्न भी हैं और फेन भी हैं। फेन न होते तो रत्नोंकी चमक और उनका निखार उतना न उभर पाता।

'गहरे पानी पैठ' में कुल मिलाकर एकसौ सत्रह कहानियाँ, किंव-दन्तियाँ, संस्मरण और आख्यान, चुटकुले हैं। यह सब तीन खण्डोंमें विभक्त हैं,

१. गुरुजनोंके चरणोंमें बैठकर जो सुना (५५ शीर्षक)

२. इतिहास और धर्मग्रन्थोंमें जो पढ़ा (४७ शीर्षक)

३. हियेकी आँखोंसे जो देखा (१५ शीर्षक)

इतिहास और धर्मग्रन्थोंसे ली गयी कथाएँ नीति और शिक्षाकी दृष्टिसे उपादेय हैं, पर नीतिके साथ-साथ लेखककी कारीगरी जिन अंशोंमें चमत्कृत होती है, वे हैं 'बड़े जनोंके आशीर्वादसे' के अन्तर्गत दी हुई दन्तकथाएँ और 'हियेकी आँखोंसे' देखे गये संस्मरण। दन्तकथाएँ हों, चाहे संस्मरण, सबके मूलमें होती हैं जीवनकी कुछ ऐसी घटनाएँ जो युग-युगके अनुभवको

और जीवनको चित्र-विचित्र परिस्थितियोंको साररूपमें रख देती हैं और जिन्हें भूलना कठिन होता है। इन घटनाओंके चित्रणका जहाँ एक उद्देश्य मनोरंजन है, वहाँ जीवन-कौशलकी शिक्षा और नीतिका प्रसार भी है। जातक, हितोपदेश, पञ्चतन्त्र और Aesop's fablesसे लेकर 'अलिफ़ लैला' तक इस प्रकारकी सभी पुस्तकें प्रायः मनोरञ्जन और नीति-शिक्षा दोनों उद्देश्योंको साधती हैं। प्रस्तुत संग्रहमें दोनों उद्देश्योंका ध्यान रखा गया है। जहाँ दोनोंका सन्तुलन है, वहीं आख्यान मन और हृदयको पूरी तरहसे प्रभावित करता है।

इस प्रकारके आख्यानों और लोक-प्रचलित कथाओंमें कथा-भाग तो प्रायः विदित और पुराना ही रहता है, पर लेखक अपनी शैली, भाषा और वर्णनके चमत्कारसे उनमें नया आकर्षण उत्पन्न करता है। जिस प्रकार आषाढ़के प्रथम दिवसका मेघ सब किसीको पुलकित करता है, पर उस श्यामल आर्द्रताको व्यक्त करनेके लिए सभी कालिदास नहीं बन पाते इसी तरह प्रचलित कथाओंको जाननेवाला प्रत्येक व्यक्ति न 'हितोपदेश' का विष्णुशर्मा बन सकता है न fables का ईसप। गोयलीयजीकी साहित्यिकता ही नहीं, उनके व्यक्तित्वकी विशेषता भी उनकी आकर्षक वर्णन-शैली और टकसाली, बामुहावरा भाषामें है।

जिन लोक-कथाओंको आप पहले सुन चुके हैं, उन्हें आप इस संग्रहमें भी देखेंगे तो पायेंगे कि प्रायः प्रत्येक कहानीको सजीव बनानेका प्रयत्न किया गया है और पात्रोंके सहज वातावरणके अनुसार स्वाभाविक भाषा-का प्रयोग किया गया है। जहाँ भी सम्भव हुआ है, कहानीके निर्वैयक्तिक आकारको नाम और रूपके उपयुक्त रंगोंसे भरा गया है। यदि एक कुत्तेको मथुरासे दिल्ली जाना है तो रास्तेमें चौमा, छटीकरा, छातई, कोसी, होडल, पलवल, बल्लभगढ़, फ़रीदाबाद, निज़ामुद्दीन और ओखलाके बिरादरी-भाइयोंसे उसकी मुलाक़ात और आवभगतका उल्लेख किया गया है ताकि यात्राका भूगोल कहानीकी वास्तविकता और

प्रभावको बढ़ा सके।

'मौलवीकी दाढ़ी' का क़िस्सा घटनाकी वजहसे ही दिलचस्प नहीं है, उसमें ज़बानकी मिठास और मुहावरोंकी रवानीके कारण मुन्शी प्रेमचन्द्र-की शैलीका आनन्द आता है :

"ख़ुदाके वास्ते मुझे भी एक बात अता फ़र्माइए, ताकि बतौर तवर्रुक़ अपनी जानसे भी ज़्यादा अज़ीज़ रख सकूँ और मनकी मुरादें पूरी कर सकूँ।"

"मुल्लाजीने तारीफ़ सुनी तो बाँछें खिल गयीं। आव देखा न ताव, चट एक बाल नोंचकर मौलवी लतीफ़को मरहम्मत फ़र्मा दिया। बालका देना था कि गाँववाले भी इसरार करने लगे....सब एकबारगी टूट पड़े। और इस नेमतसे कोई महरूम न रह जाये, इसी आपाधापीमें मुल्लाजी की दाढ़ी ठूँठ हो गयी।"

'बुढ़िया पुराण' में घटना नगण्य है, मगर मियाँ-बीवीकी बातचीतकी इतना पुरलुत्फ़ तूमार बाँधा है कि अज़ीमबेग़ चुग़ताईकी याद आ जाती है।

इस लिहाज़से 'उचक्का' भी कम मजेदार नहीं। दिल्लीकी फूलवालों की सैरमें "यह हज़रत भी एड़ीसे चोटीतक ऐनफैन बने हुए थे। पाँवमें सलेमशाही जूता, पाँच पीके लट्ठेका चूड़ीदार चुस्त पायजामा, शरीरमें चुन्नट-दार तनजेबका अँगरखा और पट्टेदार बालोंपर दिल्लीकी बँधी हुई गोलेदार पगड़ी। आँखोंमें सुरमा लगाये, मुँहमें पान खाये, और हाथमें चाँदीकी मूठकी बेत लिये दो क़दममें मुसाफ़िरके पीछे हो लिये।"

'रँगा स्यार' में वर्णनका दूसरा ही रंग नज़र आता है :

"सूर्यके संध्यासे पाणिग्रहण करते ही रजनी काली चादर डालकर सुहागरातके प्रबन्धमें न्यस्त थी। जुगनूँ सिरोंपर हण्डे उठाये इधर-उधर भाग रहे थे। दादुरोंके आशीर्वादात्मक गीत समाप्त भी न हो पाये थे कि क़ुमरीने सरोके वृक्षसे, कोयलने अमुआकी डालसे, बुलबुलने शाखे-गुलसे बधाईके राग छेड़े। श्वानदेव और वैसाखनन्दन अपने मँजे हुए

कण्ठसे श्यामकल्याण अलापकर इस शुभ संयोगका समर्थन कर रहे थे, झींगुर देवता सितार बजा रहे थे। कट्टो गिलहरी नाचनेको प्रस्तुत थी, पर रात्रि अधिक हो जानेसे वह तैयार न हुई। फिर भी उलूकखाँ वल्द बूमखाँ अपना खुरासानी और श्रीमती चमगीदड़-किशोरी अपना ईरान नृत्य दिखाकर अजीब समाँ बाँध रहे थे।"

पहले खण्डकी लोक प्रचलित कथाओं और किंवदन्तियोंमें प्रायः देहली-की बोलचाल और सभ्यताका परिचय मिलता है। कहानियोंका परिधान उसी क्षेत्रका है। दिल्लीके पास हैं गुड़गाँव, रोहतक, नारनौल और दूसरे देहाती ज़िले जहाँके जाटोंकी अक्खड़ सरलता, अनेक परिहासपूर्ण किंव-दन्तियोंका प्राण है। 'जाटकी कृतज्ञता' किस सरलतासे प्रकट हुई है :

"अरे साब, तेरा चिरागअली नाम किस मूरखने रखा है? तू तो मसालअली है।"

'ज़िद' 'नीलका भैंसा' और 'टिकिट बाबूका फूफा' जट-विद्या और जट-बुद्धिके मनोरंजक उदाहरण हैं।

इन कहानियोंके हास-परिहास और नीति-ज्ञानके पीछे जो जीवनकी झाँकियाँ हैं; लेखकने उन्हें अपने हृदयके शीशेमें उतारा है—वह पात्रोंके साथ हमजोली बनकर खेला है, हँसा है और रोया है—या तल्लीनतासे उनका चित्रण किया है। पुस्तकका तीसरा खण्ड इस दृष्टिसे बहुत महत्त्व-पूर्ण है, क्योंकि मानवताके अनेक सजीव चित्र उसमें अंकित किये गये हैं। देहलीके एक धनी सर्राफ़के निर्धन सम्बन्धी, जिन्होंने अपनी इज़्ज़त बचाने-के लिए गाँठकी गिन्नी सर्राफ़की गिन्नीके ढेरमें मिला दी थी; साधु-स्वभाव, निरक्षर बिहारीलाल जो जीवनके विषको इसलिए हँस-हँसकर पीता रहा कि दूसरोंको सदा आदर और प्रेमका अमृत पिला सके; दो भाई जो एक दूसरेकी रक्षाके लिए फाँसीके तख्तेको चूमनेको तैयार हो गये; सुन्दर नामकी वह बुढ़िया हलालखोरी, जिसने लेखकके जेलसे छूटनेपर दामन

फैलाकर दुआ दी और जिसने गद्गद होकर कहा—"मुबारक आजका दिन जो अपने जुध्याके हाथसे मुझे यह लेहना नसीब हुआ", और वह मुन्शी ऊधमसिंह, जिन्होंने २०० रु० की रक़मका "चुपचाप घाटा इसलिए उठा लिया कि किसी निरपराध मनुष्यपर उनके कारण कहीं कुछ अत्याचार न हो जाये"—यह सब ऐसे चित्र हैं, जिन्हें पढ़कर दिल भर आता है और मानवताके इन मूक, ग़रीब, स्वाभिमानी प्रतिनिधियोंके प्रति मस्तक आदरसे झुक जाता है। गोयलीयजी इन सफल रेखाचित्रोंकी कलाकारिताके लिए बधाईके पात्र हैं। काश, वह ऐसे रेखाचित्र हिन्दी संसारको लगातार देते रहें—जीवनका प्रवाह अनन्त और पारावार असीम है। गोयलीयजी-जैसे साधक ही डुबकी लगाकर नये-से-नये आबदार मोती निकाल सकते हैं। भारतीय ज्ञानपीठ लोकोदयकारी साहित्यकी अभिवृद्धिके लिए इस प्रकारके प्रकाशन प्राप्त करनेके लिए सदा प्रयत्नशील रहेगा।

लक्ष्मीचन्द्र जैन,
सम्पादक
लोकोदय ग्रन्थमाला

डालमियानगर
७ अप्रैल १९५१

गुरुजनोंके चरणोंमें बैठकर जो सुना

जीवनकी सार्थकता

एक अत्तारकी दुकानमें गुलाबके फूल खरलमें घोटे जा रहे थे। किसी सहृदयने पूछा, "आप लोग उद्यानमें फले-फूले, फिर आपने ऐसा कौन-सा अपराध किया, जिसके कारण आपको ऐसी असह्य वेदना उठानी पड़ रही है ?"

कुछ फूलोंने उत्तर दिया, "शुभेच्छु, हमारा सबसे बड़ा अपराध यही है कि हम एकदम हँस पड़े, दुनियासे हमारा यह हँसना न देखा गया। वह दुखियोंको देखकर समवेदना प्रकट करती है, दयाका भाव रखती है; परन्तु सुखियोंको देख ईर्ष्या करती है, उन्हें मिटानेको तत्पर रहती है। यही दुनियाका स्वभाव है।"

बाक़ी फूलोंने उत्तर दिया, "किसीके लिए मर मिटना, यही तो जीवनकी सार्थकता है।"

फूल पिस रहे थे, पर परोपकारकी महक उनमें-से जीवित हो रही थी। सहृदय मनुष्य चुपचाप ईर्ष्यालु और स्वार्थी संसारकी ओर देख रहा था।

अनेकान्त, दिल्ली; जून १९३९ ई०

दिलमें खोट

एक मार्ग चलती हुई बुढ़िया जब काफ़ी थक चुका तो पाससे जाते हुए एक घुड़सवारसे दीनतापूर्वक बोली,

"भैया, मेरी यह गठरी अपने घोड़ेपर रख ले और जो उस चौराहे-पर प्याऊ मिले, वहाँ दे देना। तेरा बेटा जीता रहे, मैं बहुत थक गयी हूँ, मुझसे अब यह उठायी नहीं जाती।"

घुड़सवार तुनककर बोला, "हम क्या तेरे बाबाके नौकर हैं, जो तेरा सामान लादते फिरें ?" और यह कहकर वह घोड़ेको ले आगे बढ़ गया। बुढ़िया बेचारी धीरे-धीरे चलने लगी। आगे बढ़कर घुड़सवारको ध्यान आया कि गठरी छोड़कर बड़ी ग़लती की। गठरी उस बुढ़ियासे लेकर प्याऊवालेको न दे यदि मैं आगे चलता बनता, तो कौन क्या कर सकता था ? यह ध्यान आते ही वह घोड़ा दौड़ाकर फिर बुढ़ियाके पास आया और बड़े मधुर वचनोंमें बोला,

"ला बुढ़िया माई, तेरी यह गठरी ले चलूँ, मेरा इसमें क्या बिगड़ता है, प्याऊपर देता जाऊँगा।"

बुढ़िया बोली, "नहीं बेटा, वह बात तो गयी, जो तेरे दिलमें कह गया है वही मेरे कानमें कह गया है। जा अपना रास्ता नाप ! मैं तो धीरे-धीरे पहुँच ही जाऊँगी।"

वह घुड़सवार मनोरथ पूरा न होता देख अपना-सा मुँह लेकर चलता बना।

अनेकान्त, दिल्ली; फ़रवरी १९३९ ई०

आत्म-चिन्तन

एक ध्यानाभ्यासी शिष्य ध्यान-मग्न थे कि सीकारेकी-सी आवाज़ करते हुए ध्यानसे विचलित हो गये। पास ही गुरुदेव बैठे थे, पूछा, "वत्स ! क्या हुआ ?"

शिष्यने कहा, "गुरुदेव ! आज ध्यानमें दाल-बाटी बनानेका उपक्रम किया था। आपके चरणकमलोंके प्रतापसे ध्यान ऐसा अच्छा जमा कि यह ध्यान ही न रहा कि यह सब मनकी कल्पनामात्र है। मैं अपने ध्यानमें मानो सचमुच ही दाल-बाटी बना रहा था कि मिर्चें कुछ तेज़ हो गयीं और खाते ही सीकारा जो भरा तो ध्यान भंग हो गया। ऐसा उत्तम ध्यान आजतक कभी न जमा था, गुरुदेव ! मुझे वरदान दें कि मैं इससे भी कहीं अधिक ध्यान-मग्न हो सकूँ।"

गुरुदेव मुसकराकर बोले, "वत्स ! प्रथम तो ध्यानमें—परमात्मा, मोक्ष, सम्यक्त्व, आत्म-हितका चिन्तन करना चाहिए था, जिससे अपना वास्तवमें कल्याण होता, ध्यानका मुख्य उद्देश्य प्राप्त होता और यदि पूर्व-संचित संस्कारोंके कारण सांसारिक मोह-मायाका लोभ संवरण नहीं हो पाया है तो ध्यानमें खीर, हलुवा, लड्डू, पेड़ा आदि बनाये होते, जिससे इस वेदनाकी बजाय कुछ तो स्वाद प्राप्त हुआ होता। वत्स ! स्मरण रखो, हमारा जीवन, हमारा मस्तिष्क सब सीमित है। जीवनमें और मस्तिष्कमें ऐसे उत्तम पदार्थोंका संचय करो जो अपने लिए ज्ञान-वर्द्धक एवं लाभप्रद हों। व्यर्थकी वस्तुओंका संग्रह न करो, ताकि फिर हितकारी चीज़ोंके लिए स्थान ही न रहे।"

अनेकान्त, दिल्ली; जून १९३९ ई०

राणा प्रतापका भाट

जब वीर-केसरी राणा प्रताप जंगलों और पर्वत-कन्दराओंमें भटकते फिरते थे, तब उनका एक भाट पेटकी ज्वालासे तंग आकर शाहंशाह अकबरके दरबारमें पहुँचा और सिरकी पगड़ी बग़लमें छिपाकर फ़र्शी सलाम झुका लाया। अकबरने भाटकी यह उद्दण्डता देखी तो तमतमा उठा और रोष-भरे स्वरमें बोला,

"पगड़ी उतारकर मुजरा देना, जानता है कितना बड़ा अपराध है ?"

भाट अत्यन्त दीनता-पूर्वक बोला, "अन्नदाता ! जानता तो सब कुछ हूँ; मगर क्या करूँ, मजबूर हूँ। यह पगड़ी हिन्दूकुल-भूषण राणा प्रतापकी दी हुई है। जब वे आपके सामने न झुके, तब उनकी दी हुई यह पगड़ी कैसे झुका सकता था ? मेरा क्या है, मैं ठहरा पेटका कुत्ता, जहाँ भी पेट भरनेकी आशा देखी, वहीं मान-अपमानकी चिन्ता न करके पहुँच गया। मगर जहाँ-पनाह...."

अकबरने सोचा, "वह प्रताप कितना महान् है, जिसके भाट तक शत्रुके शरणागत होनेपर भी उसके स्वाभिमान और मर्यादाको अक्षुण्ण रखते हैं।"

अनेकान्त, दिल्ली; मार्च १९३९ ई०

हृदय-परिवर्त्तन

किसी पुस्तकमें पढ़ा था, कि अमुक देशकी जेलमें एक क़ैदी, जेलरके प्रति विद्रोहकी भावना रखने लगा। वह जेलरके नाक-कान काटनेकी तजवीज़ सोच रहा था कि जेलरने उसे बुलाया और कमरा बन्द करके उससे अपनी हजामत बनवानी शुरू कर दी। हजामत बनवा चुकनेपर जेलरने कहा,

"कमरा बन्द है, ऐसे मौक़ेपर तुम मेरे नाक-कान काटनेवाली अभिलाषा भी पूरी कर लो। मैं क़सम खाता हूँ कि यह बात किसीसे न कहूँगा।"

जेलर और भी कुछ शायद कहता, मगर उसकी गरदनपर टप-टप गिरनेवाले आँसुओंने उसे चौंका दिया। वह क़ैदीका हाथ अपने हाथोंमें लेकर अत्यन्त स्नेहभरे स्वरमें बोला,

"क्यों भाई! क्या मेरी बातसे तुम्हारे कोमल हृदयको आघात पहुँचा? मुझे माफ़ करो, मैंने ग़लतीसे तुम्हें तकलीफ़ पहुँचायी।"

अभागा क़ैदी सुबककर जेलरके पाँवोंमें पड़ा रो रहा था, जेलरके प्रेम, विश्वास और क्षमाभावके आगे उसकी विद्रोहाग्नि बुझ चुकी थी। वह आँखोंकी राह अपने हृदयकी वेदना व्यक्त कर रहा था।

अनेकान्त, दिल्ली; जुलाई १९३९ ई०

एक लाख रुपयेपर ठोकर

साहूकारकी माताने कहा, "बेटा, तुम लाखों रुपयेका लेन-देन करते हो, पर मैंने आजतक एक लाख रुपया एक स्थानपर रखा हुआ नहीं देखा। एक लाख रुपया चुनकर रखनेसे कितना लम्बा-चौड़ा, ऊँचा चबूतरा बनता है यह मैं उस चबूतरेपर बैठकर देखना चाहती हूँ।"

एक लाख रुपयेका चबूतरा बना और उसपर वे बैठीं। माता जिस रुपयेपर बैठी है, वह तो दान करना ही चाहिए, यही सोचकर एक ब्राह्मणको बुलाया गया। दान देते हुए सेठको तनिक अभिमान छू गया। बोला, "पण्डितजी, दातार तो बहुत मिले होंगे, लेकिन ऐसा दातार न मिला होगा।"

पण्डितजी दान लेने अवश्य गये थे, परन्तु भिक्षुक-मनोवृत्तिके नहीं थे। उनका स्वाभिमान जाग उठा और अपनी जेबसे एक रुपया निकाल लाख रुपयेके चबूतरेपर डालकर बोले,

"तुम्हारे-जैसे दातार तो बहुत मिल जायेंगे, पर मेरे-जैसे त्यागी बिरले ही होंगे, जो एक लाखको ठोकर मारकर कुछ अपनी ओरसे मिलाकर चल देते हैं।"

वीर, दिल्ली; २७ जनवरी १९४० ई०

पाप छिपाये ना छिपे

एक प्रेमी-प्रेमिका आजीवन ब्रह्मचर्य्यपूर्वक जीवन व्यतीत करनेकी अभिलाषा रखते थे। रोज़ाना एक साथ रहते, खाते-पीते, सोते-बैठते, हँसते-खेलते, पर क्या मजाल जो मनमें विकार आता। इसी तरह सानन्द निर्विकार प्रेममय जीवन व्यतीत हो रहा था कि एक रोज़ कामदेवके वाणों ने प्रेमीका चित्त विचलित कर दिया। मनके किसी कोनेमें छिपी हुई वासना उजागर हो गयी। प्रेमिकाने प्रेमीकी भूल सुझायी, पर वह न माना। रतिगृहमें जानेसे पूर्व मकानके नीचे बहती हुई नदीपर स्नान करने गया तो देखा एक मनुष्य ढोल लिये दीवारके सहारे खड़ा है। पूछनेपर ढोलवालेने बतलाया,

"आज प्रसिद्ध शीलवान प्रेमियोंके सत डिगेंगे, इसलिए डोंडी पीटनेको खड़ा हुआ हूँ।"

प्रेमीने स्नान किया और घर आकर सदैवकी भाँति चुपचाप सो गया। सुबह उठकर देखा तो ढोलवाला चला जा रहा था। दर्याफ़्त करने पर कहा,

"अब सत नहीं डिगेगा इसीलिए जा रहा हूँ।"

तब प्रेमिकाने मुसकराकर कहा, "देखो! सात परदोंमें सोचा हुआ पाप भी तालाबकी काईके समान जनताके समक्ष आ जाता है।"

जनवरी १९४० ई०

फ़िक्र बुरी, फ़ाक़ा भला

सुनते हैं एक मस्त फ़क़ीरने किसी बादशाहके हाथीकी पूँछ इतने ज़ोर-से पकड़ ली कि वह एक क़दम भी आगे न रख सका। इस घटनाकी सूचना बादशाहको दी गयी तो उसे भी ऐसे दिलेर आदमीके देखनेकी अभिलाषा हुई। फ़क़ीरको देखनेपर बादशाह उसकी ताक़तका सबब समझ गया। उसने अपनी मस्जिदमें बिना नाग़ा रोज़ाना चिराग़ जलानेके लिए उस अलमस्त फ़क़ीरको किसी तरह राज़ी कर लिया। चिराग़ जलानेके उपलक्षमें शाही भोजनालयसे तर-ब-तर सुस्वादु भोजन फ़क़ीरको मिलने लगा।

एक माहके बाद हाथी रोकनेका अवसर दिया गया तो वह पूँछके साथ घिसटता चला गया। बादशाहने फ़क़ीरका यह हाल देखा तो मुसकरा कर पूछा, "साईं! जब रूखा-सूखा खाते थे और फ़ाक़े करते थे, तब तो हाथी रोक सके और अब शाही बावर्चीख़ानेसे बेशक़ीमती ताक़तवर ग़िज़ा खानेपर भी न रोक सके, बड़े ताज्जुबकी बात है!"

"शाहे-आलम! इसमें ताज्जुबकी क्या बात है? पहले फ़ाक़े अकसर होते थे, लेकिन फ़िक्र पास भी न फटकती थी। अब तर निवाले मिलते हैं, मगर रोज़ाना चिराग़ जलानेकी पाबन्दीकी चिन्ताने मेरे शरीरमें घुन लगा दिया है।"

जनवरी १९५० ई०

अवश्यमेव भोक्तव्यम्

एक-एक करके आठ पुत्र-वधुओंके भरी जवानीमें विधवा हो जानेपर भी वृद्धकी आँखोंमें आँसू न आये। साम्यभावसे सब कुछ सहन करता रहा। गाँवके कुछ लोग उसके धैर्यकी प्रशंसा करते। कुछ लोग वज्र-हृदय कहकर उसका उपहास करते। श्मशानमें जिन्हें शीघ्र वैराग्य घेर लेता हैं और फिर घर आकर सांसारिक कार्योंमें लिप्त हो जाते हैं—ऐसे लोग उसे जीवन्मुक्त और विदेह कहनेसे न चूकते और छिद्रान्वेषी उसे मनुष्य न मानकर पशु समझते।

बात कुछ भी हो, एक-एक करके ब्याहे-त्याहे आठ लड़के दो वर्षमें उठ गये। उनकी स्त्रियोंके करुण-क्रन्दनसे पड़ोसियोंको रुलायी आ जाती, पर वृद्ध खटोलेपर चुपचाप बैठा रहता।

कुछ दिनों बाद गाँवमें प्लेगकी आँधी आयी तो उसमें उसका एकमात्र पौत्र भी लुढ़क गया। वृद्धके धैर्यका बाँध टूट गया; उसने अपना सिर दीवारसे दे मारा। नारदमुनि अकस्मात् उधरसे निकले तो वृद्धको डकराते हुए देखकर खड़े हो गये।

विपद्-ग्रस्तको देखकर सूखी सहानुभूति प्रकट करनेमें लोगोंका बिगड़ता ही क्या है? जो कल दहाड़ मारकर रोते देखे गये हैं, वे भी उपदेश देनेके इस सुनहरी अवसरसे नहीं चूकते। फिर नारदमुनि तो आखिर नारदमुनि ठहरे! कर्त्तव्यभारके नाते कण्ठमें मिसरी घोलते हुए नारदमुनि बोले,

"बाबा! धैर्य रखो, रोनेसे क्या लाभ?"

वृद्धने अजनबी-सी आवाज़ सुननेपर अचकचाकर देखा तो पीताम्बर पहने और हाथमें वीणा लिये नारद दिखायी दिये। वृद्ध उन्हें साधारण भिक्षु समझकर भरे हुए कण्ठसे बोला, "स्वामिन्! धैर्यकी भी कोई सीमा है। एक-एक करके आठ बेटोंको आगमें धर आया। ले-देकरके

घरमें एक टिमटिमाता दीपक बचा था, सो आज उसे भी क्रूरकालकी आँधीने बुझा दिया। फिर भी धैर्य रखनेको कहते हो! बाबा, धैर्य मेरे पास अब है ही कहाँ जो उसे रखूँ? उसे तो कालने पहले ही छीन लिया। मुझे अब बुढ़ापेमें रोनेके सिवाय और काम भी क्या रह गया है, स्वामिन्!"

सहनशक्तिसे अधिक आपत्ति आनेपर आस्तिक भी नास्तिक बन जाते हैं। जो पर्वत सीना ताने हुए करारी बूँदोंके वार हँसते हुए सहते हैं, वे भी आग पड़नेपर पिघल उठते हैं—ज्वालामुखी-से सिहर उठते हैं। नारदको भय हुआ कि कहीं वृद्ध नास्तिक न हो जावे। अतः बोले,

"तो क्या तुम अपने पौत्रकी मृत्युसे सचमुच दुखी हो? वह तुम्हें पुनः दिखायी दे जाये तो क्या सुखी हो सकोगे?"

वृद्धने निर्निमेष नेत्रोंसे नारदकी ओर देखकर अपने हृदयकी वेदनाको आँखोंमें व्यक्त करके अपनी अभिलाषाको मौन भाषामें प्रकट कर दिया।

नारदकी मायासे क्षितिजपर पौत्र दिखायी दिया तो वृद्ध विह्वल हो कर लपका।

"अरे मेरे लाल, तू कहाँ चला गया था?"

"अरे दुष्ट, तू मेरे शरीरको छूकर अपवित्र न कर। पूर्व जन्ममें तूने और तेरे आठ पुत्रोंने जिन लोगोंको यन्त्रणाएँ पहुँचायी थीं, ऐश्वर्य और अधिकारके मदमें जिन्हें तूने मिट्टीमें मिला दिया था, वे ही निरीह प्राणी तेरे पुत्र और पौत्र रूपमें जन्मे थे। ये रुदन करती हुई तेरी आठों पुत्र-वधुएँ तेरे पूर्व जन्मके पुत्र हैं, जिन्होंने न जाने कितनी विधवाओंका सतीत्व-हरण किया था।"

स्वर्गीय आत्मा विलीन हो गयी। वृद्धके चेहरेपर स्याही-सी पुत गयी। नारदबाबा वीणापर गुनगुनाते चले गये:

"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभम्।"

अनेकान्त, दिल्ली; फ़रवरी १९४८ ई०

मानव-सेवक

एक बार एक परोपकारी बन्धुके पास रात्रिके समय एक देव आया और नोटबुक दिखाकर बोला, "मैं इसमें उन महानुभावोंके नाम लिख रहा हूँ, जो शुद्ध हृदयसे ईश्वरकी सेवा करते हैं। कहिए इसमें आपका नाम लिखूँ या नहीं।" परोपकारी बन्धुने नम्रतापूर्वक कहा, "क्षमा कीजिए महाशय, मेरा नाम इस डायरीमें न लिखें। मैं तो ईश्वरके बन्दोंकी सेवा करता हूँ, यदि मनुष्य-सेवकोंकी कोई डायरी आपके पास हो, तब सहर्ष उसमें मेरा नाम लिख सकते हैं, क्योंकि :

"ख़ुदा के बन्दे तो हैं हज़ारों बनोंमें फिरते हैं मारे-मारे।
मैं उनका बन्दा बनूँगा जिनको ख़ुदाके बन्दोंसे प्यार होगा॥"

—इक़बाल

सुबह उठकर देखा तो सर्वप्रथम स्वर्णाक्षरोंमें उसीका नाम डायरीमें अंकित था।

फ़रवरी १९३९ ई०

सन्तोषी

नव वर्षकी खुशीमें समस्त क्लर्कोंको वेतन बढ़ाये जानेकी बात कहकर और उनसे बदलेमें खूब धन्यवाद प्राप्त करके साहबने यह मंगलसूचना जब एक साधारण कर्मचारीको दी, तब वह अत्यन्त नम्र और वीतराग भावसे बोला,

"श्रीमान्‌की मुझपर अत्यन्त कृपा है, पर वेतन न बढ़ायें तो बड़ी दया होगी। वेतन बढ़ते ही खर्च भी बढ़ जायेगा। जैसे-तैसे निराकुलता-पूर्वक जो जीवन व्यतीत हो रहा है, उसमें एक भूचाल आ जायेगा।"

धन्यवादका इच्छुक ऑफ़िसर जो हज़ारों रुपया पानेपर भी तृष्णाकी वैतरणी नदीमें बहा जा रहा था, तिनकेका सहारा पाकर सजग हो उठा।

फ़रवरी १९४० ई०

उल्लुओंकी नसीहत

मानसरोवरसे एक हंस और हंसनी उड़कर आकाशकी सैरको निकले तो मार्ग भूल गये। इधर-उधर भटकते हुए वे एक ऐसे प्रदेशमें जा निकले, जहाँ मनुष्य नहीं, मनुष्याभास रहते थे। सारा प्रदेश उजाड़ और भयावह बना हुआ था। न वहाँ कोई शीतल सरोवर था, न हरा-भरा वृक्ष। लाचार थके-माँदे हंस-हंसनीने शुष्क वृक्षपर ही बसेरा लिया। उसी ठूँठपर कुछ उल्लू भी बैठे हुए थे। उन्हींकी ओर संकेत करके हंस बोला, "प्रिये ! अब मुझे इस प्रदेशके उजाड़ होनेका कारण मालूम हुआ। यह प्रदेश इन उल्लुओंकी कृपासे ही इस दशाको पहुँचा है। जहाँ उल्लू रहते हैं, वह देश वीरान हो जाता है।"

पतिकी बात सुनकर हंसनीने सम्मतिसूचक सिर हिलाया और उल्लुओंकी ओर तनिक भ्रू-निक्षेप करके मुसकरा दी।

उल्लुओंने यह सब सुना और वे चुपचाप दिल थामकर रह गये। सुबह होनेपर युगल जोड़ी उड़नेको उद्यत हुई तो उल्लुओंने हंसनीको पकड़ लिया, और हंससे बोले, "इसे कहाँ लिये जाता है, यह तो हमारी पत्नी है।"

हंसनी चीख मारकर रह गयी, हंसने अपना सिर पीट लिया।

उल्लू बोले, "रोने-धोनेसे कोई लाभ नहीं। चाहो तो इस प्रदेशके मनुष्योंकी पंचायत बुलाये लेते हैं; उसीका निर्णय हम सबको मान्य होगा।"

अपनी ही वस्तुके स्वामित्वका निर्णय दूसरोंसे कराया जाये, हंस यह सुनकर सिहर उठा। फिर भी मरता क्या न करता, चुपचाप स्वीकृति दे दी।

उस ठूँठ वृक्षके नीचे प्रदेश भरके मनुष्य कहे जानेवाले पंचायतमें शरीक हुए। यह प्रश्न गम्भीर था। हंसनी, हंसकी बतायी जाये या उल्लुओं की, यह ऐसी पेचीदा गुत्थी थी जो सुलझाये न सुलझती थी। पंचोंके चेहरे

पृथ्वीकी ओर गड़े हुए थे। सत्य कहते हैं तो अपने यहाँके उल्लू नाराज़ होते हैं, और इनको नाराज़ करना किसी भी हालतमें ठीक नहीं। असत्य निर्णय देते हैं तो धर्म आड़े आता है। इतनेमें एक वृद्ध बोले, "भाइयो ! प्रश्न कितना गम्भीर और जटिल है यह आप जानते हैं, फिर भी यदि इसके निर्णयका अधिकार मुझको दें तो मैं क्षणभरमें इस समस्याको सुलझा सकता हूँ।"

सब एक स्वरसे बोलें, "बेशक चौधरी ! आप ही हमारे सिरमौर हैं, जो कहोगे वही इस पंचायतका फ़ैसला समझा जायेगा।"

तब चौधरी बोले, "देखो भाइयो ! अगर हंसनी हंसकी कहता हूँ तो यह परदेशी लेकर उड़ जायेगा, हमारा इससे कुछ भी लाभ न होगा। और उल्लुओंकी कहता हूँ तो हंसनी फिर यहीं रहेगी, इससे जो बाल-बच्चे होंगे वे हंस ही होंगे। इस तरह यह प्रदेश जो उल्लुओंका कहलाता है, धीरे-धीरे हंसोंका कहलाने लगेगा।"

हंसनी उल्लुओंकी सर्व-सम्मतिसे घोषित हो गयी। हंस व्याकुल प्राण लेकर उड़ने लगा तो उल्लुओंने उसे भी पकड़ लिया और बोले, "मूर्ख ! तू जो कहता था कि यह प्रदेश इन उल्लुओंने उजाड़ दिया है, सो अब बता, यह प्रदेश हम उल्लुओंने वीरान किया है या इन ज्ञानके ठेकेदार स्वार्थी मनुष्योंने ?"

हंसने अपनी भूल स्वीकार की, तब हंसनी उसे लौटाते हुए उल्लू बोले, "याद रख ! उल्लुओंसे देशको इतनी हानि नहीं पहुँचती, जितनी कि स्वार्थी समझदारोंसे पहुँचती है। इन स्वार्थियोंके प्रत्येक श्वासमें ऐसे कीटाणु होते हैं जो सोनेके संसारको नरक बना देते हैं। संसारमें ऐसा कोई बीभत्स पाप नहीं जो स्वार्थी न कर सकें। संसारमें पापका उद्गम ही स्वार्थ है।"

उल्लुओंकी नसीहत हंस-हंसनीने नतमस्तक होकर सुनी और भूलके लिए क्षमा माँगकर मानसरोवरको चले गये।

नवयुग, १९३४ ई०

नक़ली रंग

मिस्टर स्यारनाथको भूखे मरते हुए जब कई रोज़ हो गये, तब श्रीमती शृगालकुमारीके बहुत कुछ लानत-मलामतके बाद बेचारे शान्त प्रकृति संतोषी जीव जानको हथेलीपर रखकर सिंह और चीतोंकी हृदय दहला देनेवाली दहाड़ सुनते हुए भी भोजनकी तलाशमें निकले और अपनी सनकमें अथवा किसी गीतके स्वर लगानेमें व्यस्त शहरकी ओर जा पहुँचे।

सूर्यके संध्यासे पाणिग्रहण करते ही रजनी काली चादर डालकर सुहागरातके प्रबन्धमें व्यस्त थी। जुगनूँ सिरोंपर हण्डे उठाये इधर-उधर भाग रहे थे। दादुरोंके आशीर्वादात्मक गीत समाप्त भी न हो पाये थे कि क़ुमरीने सरोके वृक्षसे, कोयलने अमुआकी डालसे, बुलबुलने शाखेगुलसे बधाईके राग छेड़े। श्वानदेव और वैसाखनन्दन अपने मँजे हुए कण्ठसे श्यामकल्यान अलापकर इस शुभ संयोगका समर्थन कर रहे थे, झींगुर देवता सितार बजा रहे थे। कट्टो गिलहरी नाचनेको प्रस्तुत थी, पर रात्रि अधिक हो जानेसे वह तैयार न हुई। फिर भी उलूकखाँ वल्द बूमखाँ अपना ख़ुरासानी और श्रीमती चमगीदड़किशोरी अपना ईरानी नृत्य दिखाकर अजीब समाँ बाँध रहे थे।

एक तो यों ही भूखके कारण पेटमें चूहे कबड्डी खेल रहे थे, इधर यह सब शोरो-गुल देखा तो मिस्टर स्यारनाथ मारे क्रोधके बौखलाकर रंगरेज़की दुकानमें घुस गये। दुकानमें चरण-कमलोंका रखना था कि श्रीमान्‌जी औंधे मुँह नीलके मटकेमें गिर पड़े। राम-राम करके रात काटी। मारे बूके दिमाग़ सड़ा जाता था। प्रातःकाल रंगरेज़ आया तो हज़रत दम साधके पड़ गये। रंगरेज़ने देखा कि रंगके मटकेमें गीदड़ फँसकर मर गया

है, उसने टाँग पकड़कर बाहर निकालकर फेंक दिया। थोड़ी देर तो मि० स्यारनाथ दम साधे पड़े रहे, फिर कनखियोंसे इधर-उधर देख विद्युत्गतिसे अपने अरण्य-भवनको प्रस्थान कर दिया।

सूर्यकी प्रखर आभा और समीरकी थपकियाँ खाते ही मि० स्यारनाथका रंग जो सूखा तो एक विचित्र मन-मोहक आकृति बन गयी। स्यारनाथ अपने रूपको देखकर फूले न समाये।

अरण्य-निवासी ठाकुर शेरसिंह, मौलाना बाघहुसैन, पं० भेड़िया-प्रसाद, चौबे भालूदत्त, मिस्टर शूकरनाथ, लाला गैण्डामल, चौधरी मृगलाल, सरदार चीतासिंह, सैयद खरगोशखाँ और श्रीमती लोमड़ीदेवीने मिस्टर स्यारनाथका यह जो रंग देखा तो भौंचक्के रह गये! हे परमात्मा! ये किस लोकके रहनेवाले विशेष जन्तु हैं। भूलोकमें तो इस शानका कभी देखा न सुना। मालूम होता है यह तो ऊर्ध्वलोकसे ही पधारे हैं।

मि० स्यारनाथ पहले तो अपने पुश्तैनी शत्रुओंको देखकर भयभीत हुए। पर उन्हें स्वयं हक्का-बक्का देखकर वास्तविक बात ताड़ गये। इस स्वर्ण अवसरको खो देना उन्होंने मूर्खता समझी। अतः उन्होंने बड़ी संजीदगीके साथ उन सबको इशारेसे बुलाया और इशारे ही इशारेमें समझा दिया कि ईश्वरने मुझे अरण्य-चक्रवर्ती बनाकर भेजा है। आजसे सबको मेरी आज्ञा शिरोधार्य करनी होगी और मेरे रहन-सहन, भोजन आदिका राज्योचित प्रबन्ध करना होगा!" सबने दुम दबाकर अधीनता स्वीकार की।

थोड़े दिन तो ख़ूब चैनकी वंशी बजी। बैठे-बिठाये नित नये भोज्य पदार्थ आने लगे। मिस्टर स्यारनाथ भाग्यका ऐसा परिवर्त्तन देख मूर्ख पशुओंपर मन-ही-मन हँसते और अपने चातुर्य्य और साहसकी चिरंजीव जम्बुककुमार और श्रीमती शृगालकुमारीसे ख़ूब ही प्रशंसा करते।

पर, 'सब दिन होत न एक समान।' वर्षा ऋतु आयी और स्यारनाथ-का बाह्यरूप धुल गया। अरण्य-वासियोंने देखा कि चक्रवर्तीकी आकृति

तो गीदड़ रूपमें होती जा रही है। उन्हें अपने चक्रवर्तीकी आकृतिके इस तरह परिवर्त्तन हो जानेसे आश्चर्य हो ही रहा था कि दूसरे गीदड़ोंके रोने की आवाज़ सुनकर संस्कारके वशीभूत स्यारनाथ भी मुँह ऊँचा करके हू-हू पुकारने लगे। मुँह खोलते ही सारा भेद खुल गया। नाहरखाँने जो तमाँचा मारा तो स्यारनाथके प्राण-पखेरू उड़ गये।

मार्च १९४० ई०

अनधिकारी वक्ता

पण्डित गंगादीन पाण्डे पढ़े-लिखे वाजिबी ही वाजिबी थे, पर थे ज़हीन। जमुनाजीकी सीढ़ियोंपर बुहारी लगाते हुए उन्हें गंगालहरी, विष्णु-सहस्र-नाम और हनुमानचालीसा कण्ठस्थ हो गये थे। कनागतोंमें न्योता जीमते-जीमते सत्यनारायणकी कथा कहना सीख ली थी और ब्याह-बारातोंमें निरन्तर जाते रहनेसे पाणिग्रहण-संस्कार भी कराने लगे थे।

इतनी उन्नति कर लेनेपर भी भाग्य उनके प्रतिकूल ही बना रहा। पण्डित गंगादीन-जैसे सरस्वती-उपासकके ऊपर उलूक-वाहिनी लक्ष्मीकी सदैव कोपदृष्टि रही। बारहमासी प्याऊपर पानी पिलाने, शिवालयमें और यमुनाकी सीढ़ियोंपर बुहारी लगाने और स्नान करनेवालोंको चन्दन घिसकर देने आदिमें कुल मिलाकर १२ रु० माहवारकी औसत पड़ती थी। घरमें कई प्राणी थे। इतने रुपयेका तो सूखा अनाज ही चाहिए। उसपर तुर्रा यह कि पाण्डेजी दो आने रोज़ चिनिया बेगम (अफ़ीम) के लिए और दो आने रोज़ दूधके लिए ज़रूर रखना चाहते थे। ऐसी हालतमें सारे परिवारको महीनेमें प्रायः निर्जला एकादशीके व्रतका अनायास ही पुण्य प्राप्त हो जाता था।

इन आये दिनोंकी निर्जला एकादशीके व्रतोंसे ऊबकर पण्डित गगा-दीन पाण्डेने अपनी आजीविका बढ़ानेके अनेक उपाय किये, परन्तु सब बेकार। उनके हृदयमें एक यही सन्ताप था कि संसारके भोले प्राणी गुणियों को क्यों नहीं पहचानते? बहुत कुछ सोच-विचारके बाद पाण्डेजीने कथा बाँचकर आजीविका-उपार्जनका निश्चय किया।

पण्डित गंगादीन शुभ लग्न-मुहूर्त देखकर सरेआम पीपलके पेड़के नीचे

कथा कहने बैठे। उनके कथानक और वक्तृत्व शक्तिमें कुछ ऐसी मोहकता थी कि श्रोता मारे आनन्दके ऊँघने लगे। यहाँ तक कि उनके दायें-बायें बैठे हुए दो श्रोता तो इतने निमग्न हुए कि उनका शरीर ही शरीर कथा श्रवण करनेको रह गया और प्राण, सुख-स्वप्न देखने लगे। उन दोनोंमें एक कपड़ेका और दूसरा अनाजका व्यापारी था। कपड़ेके व्यापारीने स्वप्नमें देखा कि दूकानपर ग्राहक खड़ा हुआ लट्ठा देख रहा है। भाव पूछनेपर बजाज़ने दस आने गज़ बतलाया, पर ग्राहक छः आने गज़ माँगने लगा। आखिर बहुत ही हुज्जतके बाद कपड़ेका व्यापारी बोला,

"अच्छा न तेरे छह आने और न मेरे दस आने। बस आठ आनेमें फ़ैसला हुआ", यह कहते हुए लट्ठेको फाड़नेके लिए कपड़ेके व्यापारी श्रोता-ने जो हाथ बढ़ाया तो पाण्डेजीकी कथा-पोथीके पन्ने हाथमें आ गये और वे बीचमें-से चट दो कर दिये गये।

कपड़ेके व्यापारी इधर लट्ठा समझकर पाण्डेजीके पोथी-पत्रा फाड़ ही रहे थे कि उधर उसी समय अनाजके व्यापारीने स्वप्नमें बिज़ारको अपनी दुकानका अनाज़ खाते देखा तो चट डण्डा उठाकर पाण्डेजीपर बिज़ारके भुलावेमें दनादन फटकारने लगा और शोर मचाने लगा, "क्या तेरे लिए ही यह अनाजकी ढेरी लगायी थी।"

पण्डित गंगादीन पाण्डेने अपनी और पोथी-पत्रेकी यह दुर्गति देखी तो जान बचाकर ताबड़तोड़ भागे और फिर उनकी नानी मरे जो कभी बग़ैर पढ़े-लिखे होते हुए कथा बाँचने या उपदेश देनेका दुस्साहस किया हो।

वीर, दिल्ली; २ मार्च १९४० ई०

पापका बाप

छज्जू जाट अपने खेतके मचानपर बैठा हुआ हुक़्क़ा पी रहा था कि उसके कानमें खन-खनकी आवाज़ आयी। आवाज़की सीधपर छज्जूने जाकर देखा तो उसके मुँहमें पानी भर आया। एक गेरुआ वस्त्रधारी साधु बड़ी सावधानीसे सौ रुपये गिनकर अपने सरके साफ़ेमें बाँध रहा था। रुपयोंको देखकर छज्जू जाटका जी तो काफ़ी मचला, पर करता क्या? लाचार मुँह लटकाये, दबे पाँव अपने खेतमें लौट आया।

छज्जू जाट अपने मचानपर बैठा हुआ इस श्वेत वर्णधारी कलयुगी अवतारके ध्यानमें निमग्न था कि 'जय बम भोले' की आवाज़ सुनकर चौंक पड़ा। देखा तो वही साधु याचनाके भावसे सम्मुख खड़ा हुआ था। छज्जू जाट साधुकी इस हरकतसे कुछ कुढ़-सा गया। उसने सोचा: "खड़ी फ़सलको टिड्डी चाट गयी, महाजनने क़र्ज़में बैल खुलवा लिये, भरे हुए अन्नको लगानवाले उठा ले गये, फिर बहनको भात और लड़कीको छूचक देना है और पास फूटी कौड़ी नहीं है, फिर भी सब्र किये बैठा हूँ। और एक यह सण्ड-मुसण्ड है कि किसी बातका फ़िक्र नहीं, सौ रुपये गाँठमें लिये फिरता है और फिर भी माँगनेकी हविस बनी हुई है। इसे कुछ नसीहत देनी ही चाहिए"—यह सोचते हुए उसे एक जट्ट-विद्या सूझ आयी।

छज्जू जाट अपने मचानसे उतरकर बहुत दीनतापूर्वक नमस्कार करते हुए बोला, "महाराज! धन्नभाग जो तुम पधारे, मेरे ऐसे नसीब कहाँ? दो रोज़से जाटनी भूखी बैठी है, उसकी ज़िद है कि जबतक किसी पहुँचे हुए महात्माको न जिमा लूँगी भोजन न करूँगी। गाँवके इर्दगिर्द चार-चार पाँच-पाँच कोस तक खोज फिरा, पर कोई महात्मा नहीं मिला, यूँ भुखमरे सैकड़ों। मेरे पूरबले पुन्न कर्मोंसे ही भगवान्‌ने तुम्हें भेजा है।"

साधु महाराजने अपनी अपूर्व आव-भगत देखी तो फूले न समाये।

शिकार फँसता हुआ देख छज्जू जाट बोला, "तो महराज ! आजका नौता कबूल करो, बड़ी किरपा होगी।"

साधु महाराजको भोजनकी इच्छा तो थी नहीं, भोजन तो वह पहले ही कहीं टाँक आये थे। वह तो नक़द नारायणके इच्छुक थे। बोले, "बेटा ! भोजन तो हफ़्तेमें हम एकाध बार ही करते हैं, अगर कुछ नशे-पानीका प्रबन्ध कर सको तो....!"

छज्जू जाट साधुके मनोभाव ताड़ गया, बीच हीमें बात काटकर बोला, "दीनबन्धु ! भोजनके साथ एक रुपया दच्छिना भी हाथ जोड़कर दूँगा। आप मुझे निरास न करें।"

साधु महाराजने दक्षिणाका नाम सुना तो बाँछें खिल गयीं। बोले, "भैया ! आजतक तो हमने कभी किसीके यहाँ जीमना स्वीकार किया नहीं, पर आज तेरे कारन हम अपनी आन छोड़ते हैं, क्या करें लाचारी है, भगवान् भगतके बसमें होते आये।"

साधु महाराजने दूध, रबड़ी, खीर, हलुआ, उदर-मध्य रख लेनेके बाद जाट और जाटनीको अनेक आशीर्वाद दिये। भर पेट आशीर्वाद ले चुकनेके बाद छज्जू जाट अपनी स्त्रीसे बोला, "जा, रुपया नारियल साधु महाराजके चरणोंमें चढ़ाकर अपने जनमको सार्थक कर ले।"

जाटनी खुशी-खुशी अन्दर गयी और फिर बाहर आकर बोली, "अन्दर हाँड़ीमें तो रुपये नहीं हैं।"

छज्जू जाट आँखें तरेरकर बोला, "हैं, रुपये नहीं हैं, कहाँ गये, अभी-अभी तो सौ रुपये गिनकर मैंने हाँडीमें रखे थे।"

जाटनी सरल स्वभाव बोली, "तो मैं क्या जानूँ ? जहाँ तुमने रखे हों, वहाँ देख लो। मुझे तो मिले नहीं।"

छज्जू जाट लपककर अन्दर गया और तनिक इधर-उधर देख-भालकर माथा पकड़े हुए बाहर आया और "हाय मैं लुट गया, बर्बाद हो गया",

कहकर ज़ोर-ज़ोरसे रोने लगा। रोनेकी आवाज़ सुनी तो अड़ोसी-पड़ोसी इकट्ठे होकर रोनेका कारण पूछने लगे। ब-मुश्किल छज्जूने बतलाया कि महाजनसे अपने बैल वापिस लानेके लिए थोड़ी देर पहले हाँडीमें सौ रुपये गिनकर रखे थे। अब जो महाराजको एक रुपया दच्छिना देनेके लिए देखा तो उसमें फूटी कौड़ी भी नहीं।

पड़ोसी छज्जूकी ग़रीबीके कारण सहानुभूति रखते थे। सुना तो सन्न रह गये। सब-के-सब एक स्वरमें बोले, "क्या कोई बाहरका आदमी घरमें आया था।"

छज्जू जाट उसी तरह मुँह लटकाये बोला, "बाहरका आदमी कौन आता? बाबाजी, जाटनी और मेरे सिवाय आज यहाँ सुबहसे चिड़िया तक नहीं फटकी।"

पड़ोसी बोले, "तो भैया! घबराओ मत। तनिक इस साधुकी तलाशी तो लो। इस भेसमें सैकड़ों उठाईगीरे चोर-उचक्के फिरते हैं।"

छज्जू जाट गिड़गिड़ाकर बोला, "भाई, ऐसा मत कहो, पाप लगता है। ये साधु तो बड़े भारी महात्मा हैं। मेरे बहुत रिरयानेपर नौता जीमनेको तैयार हुए थे।"

पड़ोसी तुनककर बोले, "ऐसे सैकड़ों महात्मा जूतियाँ चटखाते फिरते हैं। दिनमें ये लोग भीख माँगते हैं और रातको चोरी करते हैं। अच्छा, तू न ले तलाशी, हम लिये लेते हैं। पाप भी लगेगा तो कुछ चिन्ता नहीं। दो-चार रोज़ नरकमें रह आवेंगे।"

इतना कहकर पड़ोसियोंने साधुकी जेब, अण्टी आदि सब देख डाली, पर रुपये न मिले। छज्जूने देखा कि सिरके साफ़ेको किसीने नहीं देखा। अतः माथेपर हाथ मारकर बोला, "बस जी, जो होना था सो गया, अब महाराजके साफ़ेको तो न उतारो।"

छज्जू बात पूरी कहने भी न पाया कि एक जल्दबाज़ने महाराजके साफ़ेमें जो झटका दिया तो रुपये खन-खन बिखर गये। पड़ोसियोंने जल्दी-जल्दी सब रुपये हाँड़ीमें भर दिये। लालची साधु अपना-सा मुँह लेकर जब जाने लगा तो छज्जू जाटने पाँवोंकी रज अपने मस्तकपर लगाते हुए कहा, "तो महराज, अब कब दरसन दीजिएगा।"

लालची साधु नीची नज़र किये हुए बोला, "जब सौ रुपये इकट्ठे हो जायेंगे।"

बच्चे पीछेसे तालियाँ बजाकर चिल्लाये :

"लोभ पापका बाप बखाना"

वीर, दिल्ली; १३ जनवरी १९४० ई०

पाँच रुपयेकी अ़क्ल

जुम्मन नाईके फ़िजूलखर्च होनेके सबब उसकी बीवी अल्लारक्खी बड़ी परेशान रहती थी। घरमें भुनी भाँग नहीं, पर जुम्मनके यहाँ एक-न-एक मेहमान बना ही रहता था। जुम्मन ख़ुद इस मुसीबतसे नजात पाना चाहता था, मगर करता क्या? आदतसे लाचार था। बी अल्लारक्खीकी रात-दिन जली-कटी बातें सुनते-सुनते जुम्मनके नाकों दम आ गया। तब कहीं ख़ुदा-ख़ुदा करके उसने पाँच रुपये जोड़कर अपनी बीवीको दिये। पाँच रुपये पाकर बी अल्लारक्खी फूली न समायी। मारे ख़ुशीके उसके ज़मीनपर पाँव नहीं पड़ते थे। वह इस मुबारक दिनके लिए अल्लाह-मियाँका लाख-लाख शुक्रिया अदा ही कर रही थी कि जुम्मन बाहरसे हाँफता हुआ आया और बोला,

"जल्दी कर, वह रुपये कहाँ हैं? जल्दी निकाल, मैं बाज़ारसे सौदा-सुलफ़ लाऊँ और तू...."

रुपयोंके देनेका हुक्म सुनते ही बी अल्लारक्खीके शरीरपर मानो चिनगारी गिर पड़ी। वह बीच हीमें बात काटकर बोली,

"आखिर इस बौखलाहटकी कुछ वजह भी?"

"अरे वाह! हमारे यहाँ उस्ताद आये हैं और तुझे बौखलाहट दिखायी देती है।" जुम्मन ज़रा आँखें तरेरकर बोला।

"उस्ताद आये हैं तो क्या हुआ? कोई नयी बात तो है नहीं। यहाँ तो रोज़ ही एक-न-एक भुखमरा पड़ा रहता है।" बी अल्लारक्खी फिर ज़रा आँखें मटकाकर बोली, "दुतकार क्यों नहीं देते? भूखों मरकर कब तक मेहमाँनवाज़ी करोगे? 'तनपै नहीं लत्ता पान खायें अलबत्ता।' कुछ गाँठकी अक़्ल भी है या उम्रभर चोंच ही बने रहोगे?"

जुम्मन ज़रा मुसकराकर बोला, "लो चुड़ैलकी बातें, हमें चोंच

समझती है ! तीतर, कबूतर, बटेर लड़ाना हम जानें, पतंग उड़ाना हम जानें, मर्सिये गाना हम जानें, ग़रज़ हरफ़नमें उस्ताद हैं, फिर भी कहती है—क्या उम्र भर चोंच बने रहोगे ? अरे हमने तो वो-वो सुहबतें की हैं कि फ़रिश्ते भी आकर अक़्ल सीखें।''

बी अल्लारक्खी हँसीको ज़ब्त करते हुए बोली, ''बेशक, मुझसे ग़लती हुई। आखिर मैं भी तो सुनूँ आज कौन साहब तशरीफ़ लाये हैं, जिनके लिए....''

मियाँ जुम्मन बीचमें ही बात काटकर बोले, ''अरे, क्या तू आज भी ऐसा-वैसा मेहमान आया हुआ समझती है ? आज मेरे उस्ताद आये हैं, उस्ताद ! इन्हींकी बदौलत तीतरबाज़ी, पतंगबाज़ीका इल्म हासिल हुआ है। खुदा-क़सम, अपने फ़नमें यकताँ हैं। विलात, इंग्लैण्ड, बम्बई, हिन्दुस्तान, लाहौर, पञ्जाब, कलकत्ता, बंगाल, दूर-दूरमें सरनाम हैं। इनकी जूतियोंकी कोई हिरस तो कर ले।''

बी अल्लारक्खी जुम्मनकी इन शेखचिल्ली वाली बातोंसे रही सही और भी जल-भुन गयी। तुनककर बोली, ''तभी तो अम्माँ कहा करती थीं, 'मेरे ललाके तीन यार, धोबी, तेली और मनिहार'। पतंगबाज तीतरबाज़ ही उस्ताद हुए, या कभी किसी गुणीके पास भी बैठे ?''

जुम्मन और रोज़की तरह निखट्टू तो था नहीं, जो चुपचाप खड़े-खड़े सुना करता ? आज ही तो उसने चमकते हुए पाँच रुपये बी अल्लारक्खीको लाकर दिये थे, फिर क्यों किसीकी जली-कटी सुनता। वह दाँत भींचकर बोला,

''रुपये निकालती है सीधी तरहसे, या जमाऊँ सुसरीके लात ?''

बी अल्लारक्खी पिटनेकी आवश्यकतासे अधिक आदी बन चुकी थी, मगर न मालूम उसे क्या सूझी। सिरको नचाती हुई बोली, ''ऐ वाह ! तुम तो खफ़ा हो गये जो ज़रा-सा मैंने हँसी-हँसीमें छेड़ दिया तो, लो यह

एक पैसा, इसका तम्बाकू लाकर उन्हें ज़रा हुक़्क़ा तो पिलाओ, इतनेमें खोदकर रुपये निकालती हूँ।''

जुम्मन इठलाता हुआ तम्बाकू लेने चला गया।

निर्धनतामें रही-सही गाँठकी अक़्ल भी चली जाती है, पर साहूकारी-में बुद्धूके सामने भी अक़्ल हाथ बाँधे खड़ी रहती है। बी अल्लारक्खीके पास भी आज पाँच रुपयेकी तरावट थी, चट उसे भी पाँच रुपयेवाली अक़्ल सूझ गयी। वह परदेकी आड़में-से जुम्मनके उस्तादसे रोनी आवाज़में बोली, ''ख़ुदाके वास्ते तुम्हीं अपने शागिर्दको नेक राहपर लाओ, मुझ दुखियापर करम होगा, अगर आपने उसे अल्लाहतालाके अजाबसे बचाया।''

''ऐसी क्या बात है ? आख़िर कुछ माजरा भी तो सुनूँ।'' उस्तादजी ज़रा बड़प्पनके साथ बोले।

बी अल्लारक्खी तनिक ग़िड़गिड़ाकर बोली, ''निगोड़ी कुछ बात भी हो। कहूँ तो घरकी साख जाये, न कहूँ तो बदनामी, मेरी सब तरहसे मुश्किल।''

उस्तादजी ज़रा अपनी कूचीदार दाढ़ीपर हाथ फेरते हुए बोले, ''नहीं, बेटी ! हमसे क्या छिपाव, हम तो घरके-से आदमी हैं। अपने ससुर और बापकी तरह हमको भी समझ।''

''ससुर और बाप तो समझाते-समझाते मर गये, पर इनके एक नहीं लगी। ख़ुदा जाने किस मरदूदसे यह कुलच्छन सीखे हैं।'' बी अल्लारक्खी और ज़रा मचलकर बोली।

''बेटी, तू हमारे मरे हुएका ही मुँह देखे, जो हमसे न कहे।'' उस्तादजीने ज़रा बुज़ुर्गाना लहजेमें कहा।

बी अल्लारक्खी निशाना ठीक लगते देख बोली, ''लो, जब क़सम दिला दी तो मजबूरन कहना ही पड़ा कि ज़रा अपने शागिर्दसे चौकन्ने रहना। ये पहले तो आये-गयेकी ख़ूब ख़ातिर-तवाज़ा करते हैं, फिर न जाने इनको क्या वहशत सवार हो जाती है कि उसके अचानक नाक-कान कतर लेते हैं।

ख़ुदाकी पनाह, न जाने यह रोग इन्हें क्योंकर लग गया ? मैं तो सारी रिश्तेदारियोंमें बदनाम हो गयी। अच्छे मियाँ, कोई आसेब-वासेबका तो परछावाँ नहीं है ? ज़रा देखना, मैं तुम्हारे पाँवों पड़ती हूँ।"

इतना कहकर बी अल्लारक्खी तो परदेके पाससे खिसक आयी। उधर उस्तादजीके पेटमें चूहे कबड्डी खेलने लगे। अजीब दुविधामें जान थी। "रहें या चलते बनें ? चलते क्यों बनें ? आख़िर अपना शागिर्द है, क्या हमींसे यह शरारत करेगा ? कर भी दे तो क्या ताज्जुब ? बावला कुत्ता कब अपना-पराया देखता है, उसकी जरा-सी बात होगी और यहाँ उम्र भरको नकटे-बूचे हो जायेंगे। सात शुबरातकी झाड़ू और हुक़्क़ेका पानी ऐसी मेहमाँनवाज़ीपर।"

इसी तरह न मालूम क्या-क्या ऊँच-नीच सोचते हुए खूँटेसे बँधी अपनी टटुवानी खोलकर चलते बने। जुम्मन नाई खससे मढ़े हुए हुक़्क़ेको लखनवी तम्बाकूसे मुअत्तर करके लाया तो उस्तादजीको न पाकर बीवीसे पूछा, "उस्ताद कहाँ गये ?"

बी अल्लारक्खी मुँह बिचकाकर बोली, "ऐ वाह, अच्छे उस्तादजी-को लाये, शर्म न लिहाज, निगोड़ा कहते भी न लजाया।"

जुम्मन घबराकर बोला, "ऐं ! आखिर क्या हुआ ?"

बी अल्लारक्खीने मटककर कहा, "होता क्या ? नासपीटा बोला, जरा पेटीमें-से उस्तरा निकाल दो। मैंने हाथके इशारेसे मना कर दिया। बस इतनी-सी बातपर मुझे और तुम्हें गालियाँ बकता हुआ टटुवानीपर लदकर चलता बना।"

जुम्मन दाँत किचकिचाकर बोला, "अरे तो बेवक़ूफ़की बच्ची ! इसमें शर्म और लिहाज़की क्या बात थी ? दे क्यों नहीं दिया ? एक उस्तरा क्या, उनके ऊपर सैकड़ों उस्तरे निछावर कर दूँ।"

इतना कहकर जुम्मन पेटीमें-से उस्तरा निकालकर और उसे खोलकर उस्तादजीको मनानेके लिए दौड़ा। उस्तादजीने मुड़कर देखा कि जुम्मन उस्तरा लिये हुए आ रहा है तो उन्हें बी अल्लारक्खीकी बातका पूरा यक़ीन हो गया। उन्होंने अपनी टटुवानीको और भी तेज़ कर दिया। उस्तादजी-की टटुवानी दौड़ते देख जुम्मन उस्तरा दिखाकर चिल्लाने लगा, "उस्ताद, ज़रा बात तो सुनो",पर उस्ताद किसकी सुनते थे? उन्हें अपने नाक-कानकी फ़िक्र लगी हुई थी! आखिर जुम्मन लाचार मुँह लटकाये घर आ गया। जुम्मन उदास था और अल्लारक्खी खुश। आखिर उस नाक-कान कतरने-वाली बातकी ऐसी शोहरत हुई कि फिर किसी आवारा मेहमानकी जुम्मनके यहाँ आनेकी हिम्मत न हुई।

वीर, दिल्ली; ६ अप्रैल १९४० ई०

गपोड़शंख

एक नवाबसाहबको झूठ बोलनेका रोग था। अपने पतिकी इस बीमारीसे बेचारी बेगम बड़ी परेशान थी। हर-एक बातकी हद होती है, मगर नवाबके गप्प उड़ानेकी कोई हद न थी। शहर भरमें वह गपोड़शंख-के नामसे मशहूर थे, और सच बात तो यह है कि उन्होंने शायद ही कभी अपने जीवनमें सच बोला हो। नवाबसाहब रुपये-पैसेवाले आदमी थे, इसलिए उनके खुशामदियोंकी भी कमी न थी। वे लोग झूठे बढ़ावे दे-देकर उन्हें बाढ़पर चढ़ाये रखते थे।

एक रोज़ यारोंका मजमा लगा हुआ था। मुंशी बदहवासराय, शेख़ चिराग़अली, मियाँ गुलखैरू क़रीनेसे बैठे हुए नवाबसाहबके सामने दूनकी हाँक रहे थे कि मियाँ गुलखैरू जम्हाई लेते हुए और चुटकी बजाते हुए नवाबसाहबकी तरफ़ मुखातिब होकर बोले, "हुज़ूर आज तो कोई नयी बात सुनाइए।"

फ़रमाइशकी देर थी कि गपोड़शंख बेकसीके स्वरमें बोले, "यार, क्या नयी बात सुनायें! हम तो बदक़िस्मत हैं जो हिन्दोस्तान-जैसे नाक़दरे देशमें पैदा हुए। अगर विलायतमें हुए होते तो इल्मक़सम किसी बादशाहके नज़दीक कुरसी मिली होती।" बदहवासराय गपोड़शंखकी हाँ में हाँ मिलाते हुए बोला, "बेशक, इसमें क्या शक है? वहाँ तो कहते हैं, आप-जैसे ज़हीन इनसानका जीते-जी दिमाग़ खरीदकर अजायबघरमें रख लेते हैं।"

गपोड़शंख इस मीठे मज़ाक़को न समझकर मारे आत्म-गौरवके शेखीमें आकर बोले, "यारो, कलकी बात तो सुनो :

"हम अपने मुश्की घोड़ेपर चढ़कर कल शिकारको गये, तो आंधीने वह ज़ोर पकड़ा कि हाथको हाथ दिखायी न देता था। हमने जो ग़लतीसे घोड़ेको हंटर लगा दिया, तो बस गरम हो गया। लगा हिरनकी तरह चौकड़ियाँ भरने। हम लाख उसके रोकनेकी कोशिश करते थे, मगर वह किसकी सुनता था ?"

बदहवासराय : "तो हुज़ूर आपने भी तो ग़ज़ब कर दिया। मुश्कीको हंटरकी बर्दाश्त कहाँ ? वह तो कुश्त-ए-कालीन खाकर और शर्बते-शबनम पीकर इतना बड़ा हुआ है। उसने जो लाड़-प्यारकी ज़िन्दगी बसर की है, वह किसी नवाबको मयस्सर नहीं। बड़े हुज़ूरके छूचकमें हुज़ूरकी दादी साहबा उसे अपने मैकेसे लायी थीं। कुत्ते-जैसे क़दसे माशाअल्लाह वह इसी घरमें इतना बड़ा हुआ है।"

चिराग़अली : "मुश्की घोड़ेके क्या कहने ! दूर-दूरमें अपना सानी नहीं रखता। नाज़ुक मिज़ाज इतना कि ख़ुदाकी पनाह ! उस रोज़ घासका गट्ठर लिये हुए हज़रत झेरेमें गिर पड़े, तो दो रोज़ तक उठनेका नाम नहीं लिया। वह तो कहिए खैरियत हुई, जो मनाने-पुचकारनेसे उठ आये, वरना ग़ज़ब ही हो जाता।"

गुलखैरू : "अमाँ, मुश्की घोड़ेकी हर-एक चीज़ लाजवाब, उसकी सारी आदतोंमें बाँकपन ! उसकी हिनहिनाहट कोयलको बोलती बन्द करे, रूप उसका सब्ज़परीको भी शरमाये, उसकी पसलीकी उभरी हुई हड्डियाँ चम्पेकी कलियोंको दूर बिठायें, अन्दरको घुसी हुई छोटी और गोल आँखें कबूतरको भी नीचा दिखायें और उसकी खिरामाँ-खिरामाँ चाल, लखनऊके नवाब, वाजिदअलीशाहसे भी शोखीभरी ! अल्लाह झूठ न बुलाये, हुज़ूरके मुश्की घोड़ेकी हिर्स काबुली गधा तो कर ले ?"

बदहवासराय [बीच हीमें बात काटकर] : "यार, हो तुम निरे चोंच ही। श्यामकल्यान गाते-गाते यह भैरवीकी तान क्यों छेड़ दी ?

मुश्की घोड़ेसे और काबुली गधेसे क्या निस्बत ? सच कहते हैं मजलिसे-अदबमें ऐरे-ग़ैरोंको नहीं बैठने देना चाहिए।''

गपोड़शंख : "भाई, इसपर क्यों खफ़ा होते हो। यह भी किसी हद तक ठीक ही कहता है। पहले काबुली गधे शाह ईरानकी सवारीमें रहते थे।''

गपोड़शंखका इतना कहना था कि चारों तरफ़से 'ख़ूब ! ख़ूब'की बौछारें होने लगीं। वल्लाह ! कैसा मीठा फ़िक़रा है ? ग़ुलामके क़ुसूर-को वफ़ादारीमें शामिल करना, इसे कहते हैं—ग़रीबपरवरी ! किसी शाइरने ख़ूब फ़रमाया है :

"जो बात की खुदा की क़सम लाजवाब की''

''हाँ, तो हुज़ूर ! फिर क्या हुआ ?''

गपोड़शंखको पल-भर पहलेकी बात याद नहीं रहती। वह इस चक्करमें पड़े कि अब मैं क्या कहूँ, न मालूम क्या कह रहा था। इस बात-को गुलख़ैरू ताड़ गये। उन्हें ख़ुद नहीं मालूम कि कौन क्या बक रहा है, जल्दीमें बोल उठे, ''जी फिर उस बैंगनका क्या हुआ ?''

चिराग़अली : ''यार, तुम भी हो निरे ख़ुश्के। बेगुन आदमी भी कोई आदमी है। फिर भला उसका यहाँ गुनियोंकी महफ़िलमें ज़िक्र ही क्या ?''

गपोड़शंख : ''क्योंजी, मियाँ गुलख़ैरू, तुम्हें इन्होंने .ख़ुश्का किस लुग़ात (शब्दकोष) की रूसे कहा ?''

गुलख़ैरू : ''हुज़ूर, मेरी पैदाइश, ख़ुश्का शहरकी है, इसलिए मुझे यह लोग इस प्यारे नामसे पुकारते हैं।''

गपोड़शंख : ''भाई, यह .ख़ुश्का कौन-सा शहर हुआ, यह नाम तो आज ही सुना।''

ख़ुश्का किस बलाका नाम है, वह स्वयं नहीं जानता, फिर गपोड़शंख को क्या ख़ाक बताता। फिर भी दाँत निपोरकर बोला, ''वाह हुज़ूर,

वाह! गुलामके सामने नादान बनकर उसका हौसला बढ़ा रहे हैं। बन्दानवाज़! यूँ चींटीपर पसेरी डालकर उसे एहसानसे इतना न दबायें कि वह निकल ही न सके।"

बदहवासराय : "वाह, मैं सद्क़े जाऊँ हुज़ूरके इस भोलेपनपर :

इस सादगी पै कौन न मर जाय ए खुदा!
लड़ते हैं और हाथमें तलवार भी नहीं!

अच्छा साहब, आपको भोलापन मुबारक हो, लो हमीं बताये देते हैं। यह उसी खुरासान शहरका मुखफ़्फ़फ़ (संक्षिप्त रूप) है, जहाँ मैं हुज़ूरके हमराह बारातमें गया था। वल्लाह! कैसा सुहावना पहाड़ी मुल्क था कि तबीयत हरी हो गयी।"

यकायक गपोड़शंखको अपनी बात स्मरण हो आयी। बोले, "वाह यारो, कहाँकी बात कहाँ ले उड़े कि अस्ल मज़मून ही खब्त कर दिया। अच्छा, अब कोई साहब बीचमें न बोलें। हाँ, तो मुश्की घोड़ा चाबुक लगते ही हवासे बातें करने लगा। नदी, नाले, कुआँ, बावली, ग़रज़ जो रास्तेमें पड़ा, फलाँगता हुआ चला गया। यहाँतक तो हमें भी कुछ बुरा महसूस नहीं हुआ; पर जब पीपलके पेड़पर-से छलाँग मारी, तो ईंजानिबके भी होश खता हो गये। वह तो हमीं थे, जो सवारी गाँठे रहे। खैर, जब मुश्को-ने पीपलपर-से छलाँग मारी, तो हम भी गरम हो गये। फिर हमें ताब कहाँ? हमने अपनी बन्दूक़ सीधी कर ली। हम चाहते थे कि घोड़ेको गोली मार दें कि सामने हिरन दिखायी दे गया, बस गोली दनसे दाग़ दी। एक ही गोलीमें हिरनका बाँया पाँव और कान ज़ख्मी कर दिये।"

इतना सुनना था कि यार लोग बेतहाशा चीख उठे, "वल्लाह! क्या सुलझा हुआ निशाना है। एक ही गोलीमें पाँव और कान ज़ख्मी कर दिये। इसे कहते हैं शिकारका शौक़। जीवका-जीव न मरा और शौक़का-

शौक़ पूरा हो गया। अल्लाह जानता है, हुज़ूरके वे सधे हुए हाथ हैं कि चूमनेको जी चाहता है !"

चिराग़अली : "सधे हुए हाथोंके क्या कहने ? चाहें तो बन्दूक़की गोलीसे नोकेमिज़गाँ (पलकके बालकी नोक) उड़ा दें, और आँखको मालूम तक न हो।"

बेगम किवाड़की आड़से सब कुछ सुन रही थी। अब उससे अधिक बरदाश्त न हो सका, वह मारे गुस्सेके लौटन कबूतर हो रही थी,कड़ककर बोली, "वाह रे खुशामदी टट्टुओ, क्या हाँमें-हाँ मिलायी है।"

बेगमकी आवाज़ सुनी तो गपोड़शंखकी नानी मर गयी। भीगी बिल्ली-की तरह इधर-उधर देखने लगे। खुशामदी लोग भी इधर-उधर खिसकने-को हुए कि उनमें-से चिराग़अली बोला, "समझमें नहीं आता, हुज़ूरने ऐसी कौन-सी झूठ बात कही है, जो बेगमसाहबाके दुश्मनोंको इतना सदमा पहुँचा है।"

बेगम डाँटकर बोली, "झूठ नहीं तो क्या सच है ? पीपलके पेड़को घोड़ा फलाँग गया, एक ही गोलीसे हिरनका पाँव और कान ज़ख्मी कर दिये। कहाँ पाँव कहाँ कान ! निगोड़ी झूठ बोलनेमें भी अक़्लकी ज़रूरत है।"

चिराग़अली : "बस, इतनी ज़रा-सी बातपर हुज़ूरको झूठा समझ लिया। उस रोज़ तो मैं भी हुज़ूरके हमराह सायेकी तरह साथ था। वाक़या तो हुज़ूरने सच-सच ही बयान किया है। जैसा कि हुज़ूरने फ़रमाया कि आँधी उस रोज़ बड़े ज़ोरसे आयी, बस उस आँधीमें एक पीपलका दरख्त रास्तेमें गिर पड़ा और घोड़ा उसे आसानीसे फलाँग गया और जिस वक़्त हुज़ूरने गोली चलायी, उस वक़्त हिरन अपने बाँयें पाँवसे कान खुजा रहा था, इसलिए गोली पाँव और कानको ज़ख्मी करती हुई निकल गयी।"

इतना सुनना था कि यारोंने आसमान सिरपर उठा लिया, "वल्लाह, क्या कहना है! आलिमोंकी बात समझनेके लिए भी आलिम होनेकी ज़रूरत है।"

बेगम बेचारी झेंपकर अन्दर चली गयी।

चिराग़अलीकी हाज़िरबयानीसे नवाब साहबको बाँछें खिल गयीं। मज़ेमें आकर बोले, "चिराग़अली साहब, आप तो हाज़िरजवाबीमें कमाल रखते हैं।"

चिराग़अली : "अरे साहब, मैं क्या कहूँ, यह सब बुज़ुर्गोंकी जूतियों-का तुफ़ैल है। हमारे बाबाके खालाके नानाकी फूफीके बहनोईके मामू लखनऊके नवाब साहबके यहाँ मुसाहिब थे। एक रोज़ नवाब साहबके हमराह सैरको तशरीफ़ ले गये। घूमते-फिरते रात हो गयी तो नवाब साहबने जो गीदड़ोंके रोनेकी आवाज़ सुनी तो हैरतमें आकर पूछ बैठे, 'अमाँ यह जानवर क्यों रो रहे हैं?' तब हमारे मरहूम मोहतरिमने फ़रमाया कि, 'हुज़ूर, सरदीकी वजहसे रो रहे हैं।' रहमदिल नवाब साहबने कम्बल बँटवानेके लिए हुक्म दिया तो हमारे मरहूम पुरखा बोले, 'ऐ वाह हुज़ूर, कम्बल तो अदना आदमी दे जाते हैं। आपकी तरफ़से दुशाले बँटने चाहिए। कहनेकी देर थी कि नवाब साहबने लाखों रुपया ख़ैरातके लिए अता फ़रमा दिया। यह तो हुज़ूर भी जानते हैं, दुशाले जान-वरोंको क्या बाँटे जाते, यह तो सरकारकी ग़रीबपरवरीका एक तरीक़ा था। कुछ अरसेके बाद सैरको फिर गये, तो आदतके मुताबिक़ गीदड़ोंको तो रोना था ही। रोना सुनते ही नवाब साहब बोले, 'अब यह जानवर क्यों रो रहे हैं?' तब हमारे मरहूम पुरखाने, (ख़ुदा उन्हें जन्नत बख़्शे) फ़रमाया, हुज़ूर ये लोग रो नहीं रहे हैं। दुशाले मिल जानेसे सरकारकी जान-माल-की दुआ माँग रहे हैं।' हुज़ूर, ऐसे हाज़िर जवाब थे हमारे पुरखा। हुज़ूर, शेखीकी बात नहीं है। अकबर बादशाहके दरबारी मुल्ला दोप्याज़ा और राजा बीरबलसे हमारे खान्दानका शज्रः (वंशवृक्ष) मिलता है।"

बदहवासराय : "शैख़ साहब, आपने यह एक ही दूनकी हाँकी ! कुजा बीरबर, कुजा आप ! वह हिन्दू थे और आप हैं मुसलमान।"

गुलखैरू : "मियाँ मुन्शीजी, पहले किसीकी पूरी बात सुन तो लिया करो, ख़्वामख़्वाह बीचमें कूद पड़े। चिराग़अली साहब बजा फरमाते हैं। मैं ख़ुद बचपनसे सुनता आया हूँ कि बीरबरके किसी नौकरने शैखजीके गाँवसे खाट ख़रीदी थी। तभीसे यह लोग एक कुनबेकी तरह रहते आये हैं।"

नवाब : "मियाँ गुलखैरू, तुम भी कमाल करते हो, क्या खाट ख़रीदनेसे भी कुनबेदारी हो जाती है ?"

चिराग़अली : "इस चौदहवीं सदीकी बात जाने दीजिए, आज-कल तो सगे भाई कट मरते हैं। पहले वक़्तोंमें गाँवकी बेटी सारे गाँवकी बहिन-बेटी होती थी। किसीका दामाद आया और गाँव-भरने उसकी अपने दामाद-की तरह ख़ातिर-तवाज़ो शुरू कर दी। हमें अपना बचपना अच्छी तरह याद है। नथिया हलालख़ोरीको ताई, सुखिया चमारीको चाची, नन्हीं धोबनको फूफी और रमजानी सक़्क़ेको हम ताया कहा करते थे। इसी तरह हमारे वालिद सबसे अदब-क़ायदेसे बोलते थे, क्या मजाल किसीका नाम मुँहसे निकल जाये। पुराने वक़्तोंकी बात ही निराली थी।"

नवाब : "मियाँ गुलखैरू, और आप किस ख़ानदानसे निस्बत रखते हैं ?"

गुलखैरू : "हुज़ूर, हमें तो अपने ख़ानदानका कुछ पता नहीं, वालिद साहबके फ़ौत होनेके सात माह बाद हमें तो इस सराये फ़ानीमें अल्लाह मियाँने उतारा था। मगर सुनते हैं शेर अफ़ग़ान और हमारे बाबा ख़ालाज़ाद (मौसेरे) भाई थे।"

नवाब : "मियाँ शेर अफ़ग़ान, और आपके बाबाके ख़ालाज़ाद भाई ! वोह क्योंकर ? तब तो यार तुम बहुत बड़े आदमी निकले। अमाँ यह बात अबतक छिपाये क्यों रखी ?"

गुलखैरू : "हुज़ूर, अपनी तारीफ़ क्या अपने मुँहसे अच्छी लगती है ? यह तो हुज़ूरने पूछा तो बातोंके सिलसिलेमें कह बैठा वरना मरते दम तक ज़ाहिर न करता ।"

नवाब : "हाँ, तो शेर अफ़ग़ान आपके बाबाजानके खालाज़ाद भाई क्योंकर थे ?"

गुलखैरू : "हुज़ूर, आपको नहीं मालूम ? यह क़िस्सा तो सारे विलायतमें, लन्दनमें, बम्बईमें, हिन्दुस्तानमें, लाहौरमें, पंजाबमें, दिल्लीके चाँदनी चौकमें बच्चे-बच्चेके विरदे-ज़बान है ।"

नवाब : "ताज्जुब !"

गुलखैरू : "शेर अफ़ग़नके और हमारे बाबाके घोड़े दोनों एक जंगलमें चरा करते थे । तभीसे उन दोनोंमें खालाज़ाद भाई-जैसा प्यार हो गया था ।"

बदहवास : "किनमें, घोड़ोंमें या तुम्हारे बाबा और शेर अफ़ग़नमें ?"

गुलखैरू : "मुन्शीजी, हो निरे शेखचिल्ली ? मैं क्या देखने गया था खुद अन्दाज़ा लगा लो ।"

चिराग़अली : "भाई गुलखैरू ! आपके उन बुज़ुर्गवारआलामें क्या-क्या सिफ़ात थीं ?"

गुलखैरू : "सिफ़ात, लाखों । तीतर लड़ाना वह जानते थे, कबूतर वह पालते थे, कनकौवे वह उड़ाते थे, बटेरोंकी पालियाँ वह बदते थे और हाज़िर जवाब ऐसे कि...."

सब : "भई खूब !"

गुलखैरू : "एक बार हमारे बाबाजान ससुरालसे दादीको लिये आ रहे थे । रास्तेमें एक रईसज़ादेने छेड़नेकी नीयतसे पूछा, "क्यों भई, वह जो तेरे साथ चल रही है, तेरी बहन होती है न !"

"औरतके मुँहपर बहन बनाना, समझ लीजिए हुजूर मर्दके लिए कैसी तौहीन है ? मगर वह चिढ़े नहीं, बड़े ही भोलेपनसे जवाब दिया, "बन्दा-नवाज़, जिसे आप बहन कहते हैं, वह मेरी बीवी होती है।" इतना सुनते ही हमारी दादी साहिबा तो खिलखिलाकर हँस पड़ीं, मगर रईसज़ादा बग़लें झाँकने लगा।"

नवाब : "भई वाह ! क्या माक़ूल मज़ाक़ हुआ है कि तबीयत बाग़-बाग़ हो गयी। मुन्शी बदहवासराय साहब, सुना है आपका खानदान भी तो किसी आलीविक़ारसे ताल्लुक़ रखता है।"

बदहवास : "जी हाँ, इतना तो नहीं मगर हाँ, हमारी नानीके पीत-सरेके मौसेरे भाईके सालेके भानजदामाद लालबुझक्कड़ थे। यही मशहूरो-मारूफ़ बुज़ुर्ग हमारे ख़ानदानके बड़े थे।"

चिराग़अली—"आहा, आप उन आला हस्तीसे ताल्लुक़ रखते हैं। सुना है वह तो बड़े ज़हीन इनसान थे। हाज़िरजवाबीमें सुना है कमाल रखते थे।"

बदहवास : "अरे साहब, कमाल क्या, अपना सानी नहीं रखते थे। उनका दम ग़नीमत था। आज तक उस गाँववाले उन्हें याद करके रोते हैं। एक मर्तबा रातको गाँवमें-से हाथी निकल गया। सुबह उठकर लोगोंने जो हाथीके पाँवके निशान देखे तो, भौंचक्के हो गये। उन दिनों काहेको किसीने हाथी देखा था, आज-कलकी तरह कुत्ते-बिल्लीके मानिन्द तो हाथी फिरते न थे। लाखोंमें किसी एकने देखा होगा। अब सब लोग हैरान कि हे परमात्मा यह क्या बला आसमानसे कूदी ? लेकिन किसीकी समझमें खाक न आया। आखिर हमारे बुज़ुर्गवार साहबके पास लोग गये और मिन्नत-समाजत करके उन्हें निशान दिखाने लाये तो, उन्होंने देखते ही फ़रमाया,

"लाल बुझक्कड़ जाने और न जाने कोय।
पगमें चक्की बाँध के हिरना कूदा होय॥"

सब लोग : "वाह वा वाह ! क्या हाज़िर दिमाग़ थे ! इसे कहते हैं फिलबदी शाइरी ! क्या नाज़ुक ख़याल है ? हिरनके पाँवमें चक्की बाँधकर हाथीके पाँवसे मुशाहबत देकर क्या बात पैदा की है ? सुब्हान अल्लाह ! सुब्हान अल्लाह !! क्या सूझ थी, क्या दिमाग़ था, शाइरीमें कितनी फ़साहत और बलाग़त भरी हुई है कि वाह वा, दाद नहीं दी जा सकती ।"

इसी सिलसिलेमें ही जवाँमर्दीकी डींगें मारी जाने लगीं कि यकायक 'हाय मर गयी, बचाना, दौड़ना' की चीख सुनी, तो भगदड़ मच गयी । गपोड़शंख कूदकर जनानेमें हो लिये, कोई चारपाईके नीचे तो कोई किवाड़ोंकी जोड़ीके पीछे । ग़रज़ जिसे जहाँ मौक़ा मिला घुस गया । अब सब हैरान कि यह हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा कहाँ और कैसे हो गया ? किसकी जान फ़ालतू थी, जो बाहर जाकर पता लगाये । और सच बात तो यह है कि मारे बौखलाहटके यह बात दरयाफ़्त करनेकी सूझी ही किस मरदूदको थी ? आखिर जब बूढ़ी मामा रोती हुई और लँगड़ाती हुई ऊपर आयी, तब पता चला कि ज़ीनेपर केलेके छिलके-परसे पाँव फिसल गया था, जिससे कि उसके हड्डे-गुड्डे टूट गये थे, उसीने यह शोर मचाया था ।

हक़ीक़त मालूम होते ही सब ही-ही हू-हू करते हुए फिर इकट्ठे हो गये ।

गपोड़शंख : "लोग भी कैसे गावदी हैं, तिलकी तेलन और राईका पहाड़ बना लेते हैं । मैं तो समझा कि डाकू आ गये, दौड़कर तलवार लाऊँ कि इतनेमें क़िस्सा ही बेबाक़ हो गया । इल्म क़सम, दिलके अरमान दिल ही में रह गये, हसरतोंका खून हो गया । मुद्दतोंसे तलवार चलानेको बाज़ू फड़क रहे थे, रह-रहकर मन्सूबे बाँध रहा था, यूँ तलवार चलाऊँगा और यूँ धोबी-पाटके दाँवपर या उखेड़में बैठकर दे मारूँगा, मगर अफ़सोस ! वह नादिर मौक़ा ही हाथ न आया ।"

गुलख़ैरू : "और हुज़ूर, मेरा हौसला तो देखिए, शोरोगुल सुनते हो किवाड़ोंके पीछे हो रहा कि कब बलवाई आवें और कब सबसे पहले तुला हुआ हाथ जमाऊँ।"

चिराग़अली : "मेरी न कहना, मैं चारपाईके नीचे बैठा ही इस नीयत-से था कि इधर डाकू आयें और उधर मैं चारपाई उनके ऊपर उलटकर गिरफ़्तार करूँ।"

बदहवासराय : "यारो, तुम तो कट मरनेको तैयार हो। तुम्हें कोई रोनेवाला न धोनेवाला, आज मरे कल दूसरा दिन। आगे नाथ न पीछे पगहा, पर यहाँ तो कुनबेदार आदमी ठहरे। बहन हमारे, भांजी हमारे। फिर क्योंकर लड़नेको तैयार हो जाते। चुपके-से सन्दूक़चेमें बैठ गये, कि कोई लड़े या मरे, हम तो कुछ न बोलेंगे। हाँ, सन्दूक़के सामानके कोई हाथ लगाता, तो हम अलबत्ता जानपर खेल जाते। चमड़ी दे देते, पर दमड़ी न जाने देते। जानसे ज़्यादा रुपयेकी क़द्र करना हमने तहसीलके खज़ांची साहबकी अरदलीमें रहकर सीखा।"

गपोड़शंख बीच ही में बात काटकर बोले, "अमाँ, यह तो बताओ, झूठको लोग गुनाह क्यों समझते हैं ?"

गुलख़ैरू : "हज़रत सच तो यूँ है कि झूठको गुनाह वही लोग समझते हैं, जिनके पास अक़्ल कभी झाँकने भी नहीं आती। वरना झूठके बग़ैर दुनियाका काम ही नहीं चल सकता। औरोंकी बात जाने दीजिए, हर एक क़ौम और हर एक देशके रूहेरवाँ शाइर लोग होते हैं, सब उनके बताये हुए रास्तेपर चलते हैं, वह भी इस झूठसे न बचने पाये।"

बदहवास : "यह एक ही दूनकी हाँकी, कि झूठसे न बचने पाये। बन्दे ख़ुदा यह नहीं कहते कि सच उन्होंने जिन्दगी-भर न बोला, ता-उम्र झूठकी ही परस्तिश करते रहे। माशूक़के मुँहको चाँद, उसके रुख़सारके तिलको आशिक़की आहोंसे दुनिया-भरके जले हुए पहाड़ोंका धुँआँ बताया।

उसके हँसनेको बिजलियाँ गिराना और रोनेको मेंह बरसाना लिखा। उसके अबरू (भवें) और नीके-मिजगाँ (पलकोंकी बालोंकी नोक) को छुरी, तीर, तलवार, दश्ना और खंजरसे भी ज़्यादा खतरनाक समझा। उसकी कमर दूरबीनसे भी देखनेमें न आ सके, इतनी पतली और आँखें काजलका भार भी न उठा सकें, इतनी नाज़ुक और उसकी जुल्फ़ेंदुताँको साँपोंका जोड़ा तसलीम किया। ग़रज़ गधेके सिरपर सींग, आसमानमें फूल और इनसानके दुम तक लगानेमें वे लोग न चूके !"

गुलखैरू : "उफ़ ! उफ़ ! ! उफ़ ! ! ! कैसा मूज़ी दर्द है कि किसी तरह चैन नहीं मिल रहा है।"

नवाब : "मियाँ गुलखैरू, यह अचानक दर्द कैसा ? कहाँ हो गया भाई। अभी तो खासे अच्छे-बिच्छे बातें कर रहे थे।"

गुलखैरू : "अजी हुज़ूर क्या बताऊँ ? आपके ग़ुलामने कोठीके आँगनमें एक चमेलीका पेड़ लगा दिया है। मौक़ेकी बात, पेड़से फूल टूटकर मेरी पीठपर कुछ इस ढंगसे गिरा कि मैं हाय करके रह गया। तौबा है, तभीसे चैन नहीं लेने देता ! कुछ देर बातोंमें खामोश रहा कि नामुराद फिर उठ खड़ा हुआ। उई लेना बचाना हाय...."

चिराग़ : "यह दर्द कमबख्त होता ही ऐसा नामुराद है कि तौबा, तौबा। दो रोज़ हुए पड़ोसमें एक फूहड़ धान कूट रही थी। उसकी धमकसे कानोंमें ऐसी टीस हो गयी है कि किसी पहलू चैन नहीं पड़ता ! उफ़....।"

बदहवास : "हुज़ूर, अब तो सबको इजाज़त दीजिए। मुशाअ़रेका रंग फिर कभी जमेगा। मेरा भी बुरा हाल है। एक हफ़्ता हुआ जब एक पोश्तके दानेको नौ दफ़े पीसा ग्यारह दफ़े छाना। चौथाई लुगदी पी, बाक़ी उठाकर रख दी। मगर क़ब्ज़के मारे तभीसे बुरा हाल है।"

नवाब : "भई, हमारा खुद बुरा हाल है। कल खिचड़ी खाते हुए

पोंहचा उतर गया था। अच्छा भाई जाओ आराम करो वक़्त भी दससे ऊँचा हो गया है।"

× × ×

एक दिन बेगम किसी रिश्तेदारीमें गयी, तो उसे देखते ही औरतोंने चुपके-से कहा, "बहिनो, खामोश रहो, गपोड़शंखकी घरवाली आ रही है, ऐसा न हो कि कोई बात हमारी यह सुन जाये और फिर जाकर अपने मर्दसे कह दे। कहीं ऐसा हो गया, तो सारे शहरमें बातका बतंगड़ फैल जायेगा।" यह बात बेगमके कानोंमें भी पड़ गयी। वह मारे ग़ैरतके उलटे पाँव अपने घर लौट आयी और आसन-पाटी लेकर पड़ रही। गपोड़शंख हैरान थे कि यह यकायक आनन्दकाण्डमें कोपकाण्ड कैसे प्रारम्भ हो गया। अब उन्हें डर लगने लगा कि कहीं किचकन्धा-काण्ड शुरू होकर लंकाकाण्ड तक नौबत न पहुँचे। अनेक मिन्नतें और खुशामदोंके बाद बेगम बोली, "आखिर तुम मुझे यूँ कबतक जलाओगे? सारे शहरमें बदनामी हो रही है, पर तुम्हारे कानपर जूँ तक नहीं रेंगती। मैं पूछती हूँ, तुम्हें इस झूठ बोलनेमें क्या मज़ा आता है? कभी छठे-चौमासे, होली-दीवाली सच भी बोल लिया करो। बूढ़े होनेको आये, पर आदमी न बने। यह बाल क्या धूपमें सुखाकर ही सुफ़ेद करोगे?"

गपोड़शंख सहमकर बोले, "मैं तो खुद ही इस झूठकी बीमारीसे परेशान हूँ। पर क्या करूँ, यार लोग पीछा छोड़ें तब न। उनकी शक्ल देखते ही झूठकी वहशत सवार हो जाती है। अच्छा लो। हम परदेश जाते हैं। न वहाँ ये लोग होंगे और न हम झूठ बोलेंगे। बस झूठकी आदत छोड़कर ही हम तुम्हें अब अपनी शक्ल दिखलायेंगे।"

बेगमने खुशी-खुशी सफ़रकी तैयारी कर दी। यारोंसे बिदा होकर गपोड़शंख शामके वक़्त देशाटनको निकल पड़े। बेगम खुश थी कि अब पतिदेव सत्यवादी हरिश्चन्द्र ही बनकर आयेंगे। गह सारी बदनामी भलाई-

में तब्दील हो जायेगी, लोग मुझे भी इज़्ज़तकी नज़रसे देखेंगे। उनके आनेपर कुत्तोंको दूध और भूखोंको भरपेट खाना खिलाऊँगी। इसी उधेड़बुनमें रात निकल गयी, खुशीके मारे उसे नींद न आयी। सुबह उठकर उसने देखा, तो गपोड़शंख दालानमें पाँव फैलाये हुए दोनों कूल्होंपर हाथ रखे हुए हाँप रहे हैं! उनको देखते ही बेगमका माथा ठनका। अन्यमनस्क भावसे पूछा, "क्यों, क्या सत्यवादी बन आये?"

गपोड़शंख रुँधे हुए स्वरसे बोले, "तुम्हें सत्यवादी बनानेकी पड़ी है, यहाँ जानकी नौबत आ पहुँची।"

बेगम घबराकर बोली, "क्यों, क्या हुआ?"

गपोड़शंख थूकको सटकते हुए बोले, "यह न पूछो, याद आते ही बदनके रोंगटे खड़े हुए जाते हैं।"

बेगम उत्सुकतासे बोली, "आखिर क्या बात हुई?"

गपोड़शंखने अपनी दास्तान इस प्रकार शुरू की,

"यहाँसे चलकर मैं दो घण्टेमें ही कदलीवनमें पहुँच गया। वहाँ एक साफ़-सुथरी चट्टानपर बैठकर खाना खानेकी तैयारीमें था कि इतनेमें पूरे बाईस हाथ लम्बा, न जौ-भर छोटा न तिल-भर बड़ा, शेर आ पहुँचा। यूँ शेरके शिकार सैकड़ों ही किये; पर न मालूम उस वक़्त क्या हुआ, उसे देखते ही मुझे पसीना आ गया। शायद पसीना आनेकी वजह मेरी गरम-मिज़ाजी हो। खैर, मैंने उसे निशाना बनानेके लिए जो बन्दूक़ सँभालनी चाही, तो खयाल आया कि इस निहत्थेसे तो खाली हाथ ही लड़ना चाहिए। यह सोचते ही मैं चाहता था कि धोबीपाटका हाथ दिखाकर इसे ज़मीन सुँघा दूँ कि रहम आ गया और सोचा, क्यों नाहक़ इसकी जान लूँ! यह तो जानवर है, इसका क्या बिगड़ेगा, मुफ़्तमें इस जूनसे छूट जायेगा; मगर पाप नाहक़ मुझे लगेगा। यह खयाल आते ही मैं तो जूतियाँ छोड़कर भाग निकला। मुझे भागता देखकर शेर भी शेर हो गया। अजी, वह तो आखिर शेर था। भागते हुएको देखकर तो कुत्ता भी शेर हो जाता है। अब कहीं

छिपनेकी जगह नहीं। क्या करूँ, कुछ सूझ ही न पड़ता था। शुक्र समझिए कि मैं बचपनसे ही ज़हीन हूँ। दिमाग़पर ज़रा ज़ोर दिया, तो चट औसान सूझ आया। चनेका पेड़ खड़ा हुआ था। बस, दो छलांगमें पेड़की फुनगीपर जा बैठा। अब शेर बड़े चक्करमें, खिसियानी बिल्ली खम्भा नोचे—इस कहावतके मुताबिक़ झेंप उतारनेकी ग़रज़से लगा पेड़के चारों तरफ़ घूमने। कुछ देर तक तो मैं भी भूख और प्यासको रोके सब्र किये बैठा रहा; पर पेशाबकी हाजतने ज़ोर पकड़ा तो परेशान हो गया। आख़िर सोचते-सोचते ख़याल आया कि क्यों न दरख़्तपर-से बैठे-बैठे ही पेशाब कर दूँ। मेरा दरख़्तपर-से पेशाब करना था कि वह ज़ालिम पेशाबकी धारको पकड़कर ऊपर चढ़ने लगा। अब तो मैं भी चौकड़ी भूल गया। घबराकर पेशाब रोक लिया। पेशाबका रोकना था कि वह धड़ामसे औंधे मुँह ज़मीनपर गिरकर ठण्डा हो गया। एक मुसीबतसे निजात पायी, तो दूसरीको दावत दी। पेशाब-की धारके ज़ोरसे पेड़की जड़ें हिल गयीं और पेड़ मुझे लिये पानीके अन्दर चला गया। ख़ैरियत हुई, जो हम तैरना जानते थे, वरना उसी खेतमें क़ब्र बनी होती।"

बेगम आँखें नचाती हुई बोली, "जब पानीमें भीगकर आये हो तो बदनके कपड़े कैसे सूखे रह गये ?"

गपोड़शंख : "आख़िर इतनी देर धूपमें चलकर आया हूँ। कपड़ोंके सूखनेमें कुछ देर लगती है ?"

बेगम माथेपर हाथ मारकर बोली, "बस, माफ़ करो। मैं बाज़ आयी आपके सत्यवादी बननेसे। जितने पहले थे उतने ही बने रहो—आगे न बढ़ो, यही ग़नीमत है। अल्लाह वास्ता न डाले ऐसे गपोड़शंखों और झूठोंके बादशाहोंसे।"

वीर, दिल्ली; ३ फ़रवरी १९४० ई०

दुर्बलताका अभिशाप

भेड़िया नदीके किनारे पानी पी रहा था कि उसने देखा—नीचेकी तरफ़, बहावकी ओर एक भेड़का बच्चा भी पानी पी रहा है। उसे देखते ही भेड़ियेके मुँहमें पानी भर आया। बोला,

"क्यों बे! पानीको जूठा क्यों कर रहा है? देखता नहीं हम पानी पी रहे हैं?"

भेड़का बच्चा बोला, "चचा, आप ऊपरकी तरफ़ पानी पी रहे हैं, आपका जो जूठा पानी बहकर आ रहा है, मैं तो उसे पी रहा हूँ।"

भेड़िया लड़नेका कोई बहाना न पाकर बोला, "अच्छा, तू यह तो बता कि तैने एक साल हुए हमें गाली क्यों दी थी?"

भेड़-बालक सकपकाकर बोला, "चचा, मेरी तो उम्र ही ब-मुश्किल छह महीनेकी है, भला एक साल पहले मैं आपको गाली कैसे दे सकता था?"

भेड़िया खीझकर बोला, "अच्छा, तेरी माँ मुझे कल कोस क्यों रही थी?"

भेड़का बच्चा बोला, "चचा, उसे तो मरे हुए भी एक माह हो गया, वह आपको कल कहाँसे कोसने आती?"

भेड़ियेने देखा कि भेड़का बच्चा बड़ा चालाक है, किसी बातपर जमने नहीं देता। अतः झुँझलाकर, "क्यों बे छोकरे, तू इतनी देरसे हमारा सामना क्यों कर रहा है?" कहा और उसे मार डाला।

तब पेड़पर बैठी हुई मैनाने तोतेसे कहा, देखा, निर्बल सबलके साथ कितना ही सभ्यतापूर्ण और सचाईका व्यवहार करे, वह सुरक्षित रह नहीं सकता। भेड़ जबतक भेड़ बनी रहेगी, उसे खानेको भेड़िये पैदा होते ही रहेंगे।"

वीर, दिल्ली; २७ जनवरी १९४० ई०

जाति-द्रोह

बारह वर्षके बालक शेरसिंहने अपने कुत्तेको पुचकारते हुए अपनी माँसे कहा, "माँ, लोग अपने लड़कोंके—तोताराम, वृषभचरन, हंसराज, मयूरध्वज, अश्वसेन, भालूमल, केहरिचन्द, कपिध्वज, हाथीसिंह, नीलकण्ठ और लड़कियोंके—मैना, कट्टो, कोकिला, मृणालिनी, हंसा, नागकुमारी, गोमती वग़ैरह, अन्य पशु-पक्षियोंके नाम तो रखते हैं, लेकिन कुत्तेके पर्याय-वाची—श्वानसेन, कूकरनाथ, रात्रिजागरमल, वग़ैरह—नाम नहीं रखते। उलटा किसीको कुत्ता महाशय कह दो तो बुरा मान जाता है और लड़ने-मरनेको तैयार हो जाता है। माँ, मेरा नाम शेरसिंहकी बजाय श्वानसेन रख दो, मुझे यह नाम जितना प्रिय है उतना ही अपने वर्तमान 'शेरसिंह' नामसे नफ़रत है। कल सरकसमें देखा शेर तो माँस खाता है, उसके शरीरमें-से महादुर्गन्ध आती है, बड़ा ही क्रोधी और हिंसक पशु है।"

माँ बालककी सरलतापर मुसकरायी, फिर प्यारसे बोली, "बेटा, कुत्ता स्वामिभक्त और वफ़ादार तो है लेकिन वह अपनी जातिसे द्रोह रखता है। अपनोंको देखते ही काटनेको दौड़ता है। जो जाति औरोंसे प्रेम और अपनोंसे बैर रखती है, उस जातिको सब नफ़रतकी नज़रसे देखते हैं। इसलिए कुत्ता शब्द इतना घृणित, अपमानजनक बन गया है कि कोई भी इसे अपने लिए नहीं सुनना चाहता।"

शेरसिंहने माँकी बात सुनी तो उसने अपना पालतू कुत्ता दूर भगा दिया।

वीर, दिल्ली; १० फ़रवरी १९४० ई०

भाइयोंकी बदौलत

देहलीकी तारीफ़ सुनकर मथुराका एक कुत्ता सैर करनेके लिए आया तो देहलीके कुत्तोंने उसका निवास-स्थान पूछा। स्थान बतानेपर पूछा, "मथुरासे कितने महीनोंमें आ पाये हो ?"

उत्तर मिला, "सात रोज़में।"

देहलीके कुत्तोंने हैरानीसे कहा, "हैं! हम तो सुना करते थे कि मथुराका रास्ता महीनोंका है। तुम सात रोज़में कैसे आ गये ?"

मथुरावाले कुत्तेने निहायत आजिज़ीसे जवाब दिया, "बेशक रास्ता तो महीनोंका ही है, मगर अपने भाइयोंकी बदौलत यह रास्ता एक हफ़्तेमें ही तय कर सका हूँ।"

"वह कैसे ?"

"वह ऐसे कि मथुरासे चला तो चौमाके अपने कुत्ते भाइयोंने मेरी टाँग पकड़कर आव-भगत की, उनसे जान छुड़ाकर भागा तो छटीकरावालोंने आड़े हाथ लिया, उनसे बचकर भागा तो आगे छातई, फिर कोसीके भाइयोंने गला दबोचा। वहाँसे निकलकर भागा तो—होडल, पलवल, बल्लभगढ़, फ़रीदाबाद, निज़ामुद्दीन, ओखला वग़ैरहके कुत्ते भाइयोंने अपनी औक़ातके अनुसार ख़ातिर तवाज़ा की। कहीं भी आरामसे साँस न लेने दिया। सारे रास्ते भागा हुआ आ रहा हूँ।"

देहलीके कुत्तोंने मारे शर्मके गरदन नीची कर ली और मनमें सोचने लगे, "हा! हमारी भी कैसी पतित क़ौम है जो अपनोंसे बैर रखती है और दूसरोंके तलुवे चाटती है।"

२ फ़रवरी १९४० ई०

ईर्ष्याका परिणाम

दो पण्डित दक्षिणा प्राप्त करनेकी नीयतसे एक सेठके यहाँ पहुँचे। विद्वान् समझकर सेठ साहबने उनकी काफ़ी आव-भगत की। उनमें-से एक पण्डित जब स्नान वग़ैरह के लिए गये तो सेठजी दूसरे पण्डितसे बोले,

"महाराज, ये आपके साथी तो महान् विद्वान् मालूम होते हैं।"

पण्डितजीमें इतनी उदारता कहाँ जो दूसरेकी प्रशंसा सुन लें। मुँह बिगाड़कर बोले, "विद्वान् तो इसके पड़ोसमें भी नहीं रहते। यह तो निरा बैल है।"

सेठजी चुप हो गये। जब उक्त पण्डित संध्या वग़ैरह में बैठे तो पहले पण्डितजीसे बोले, "महाराज, आपके साथी तो प्रकाण्ड विद्वान् नज़र आये।"

ईर्ष्यालु पण्डित अपने हृदयकी गन्दगीको बखेरते हुए बोला, "अजी, विद्वान्-उद्वान् कुछ नहीं, कोरा गधा है।"

भोजनके समय एकके आगे घास और दूसरेके सामने भुस रखवा दिया गया। पण्डितोंने देखा तो आगबबूला हो गये। बोले, "सेठजी, हमारा यह अपमान, इतनी बड़ी धृष्टता !"

सेठजी हाथ जोड़कर बोले, "महाराज, आप ही लोगोंने एक-दूसरेको गधा और बैल बतलाया है। अतः गधे और बैलके योग्य खुराक मैंने सामने रख दी। आप ही बतलाइए, इसमें मेरा क्या क़ुसूर है ? मैं तो आप दोनोंको ही विद्वान् समझता था, पर वास्तविक बात तो आपने स्वयं ही बतला दी।"

सेठजीकी बातसे पण्डित बड़े लज्जित हुए और पछताते हुए मनमें कहने लगे, "वास्तवमें जो अपने साथीको बढ़ा हुआ नहीं देख सकता, वह स्वयं भी नहीं बढ़ सकता। स्वयं प्रतिष्ठा प्राप्त करनेके लिए अपने साथियोंका आदर करना, उन्हें बढ़ाना अत्यावश्यक है। ईर्ष्यालु मनुष्योंकी हमारी जैसी ही गति होती है।"

अनेकान्त, दिल्ली; अगस्त १९३९ ई०

मूर्ख ईर्ष्यालु

एक मनुष्यकी पूजा-उपासनासे प्रसन्न होकर देवीने प्रकट होकर उसे एक शंख दिया और कहा, "जो तू चाहेगा वही इस शंखके बजानेपर मिलेगा और पड़ोसियोंको तुझसे दूना मिलेगा।" भक्त प्रसन्न होकर चला गया। उसने शंख बजाया और कहा कि मेरा एक आलीशान मकान बन जाये। शंख बजाते ही मकान तुरन्त बन गया और पड़ोसियोंके वैसे ही दो-दो महल बन गये। भक्तको यह बहुत बुरा लगा। भला ईर्ष्यालु मनुष्य दूसरोंको कब फूलते देख सकता है? उसने क्रुद्ध होकर शंखको एक कोनेमें डाल दिया। मगर कुछ अरसे बाद उसे रुपयोंकी सख्त ज़रूरत हुई। लाचार होकर शंख बजाया। शंख बजते ही उससे दूने रुपये पड़ोसियोंके घरोंमें आन पड़े। यह उससे बरदाश्त न हुआ और उसने फिर क्रुद्ध होकर कहा कि, "मेरे घरके आगे चार-चार कुएँ खुद जायें।" शंख बजा और चार कुएँ उसके यहाँ और आठ-आठ पड़ोसियोंके घरके आगे खुद गये। फिर कहा, "मेरी एक आँख फूट जाये।" शंख बजते ही उसकी एक और पड़ोसियोंकी दोनों आँखें फूट गयीं। और अन्धे होनेके कारण पड़ोसी बेचारे कुओंमें गिर पड़े। उन्हें कुओंमें गिरते देख ईर्ष्यालु मनुष्यको बहुत प्रसन्नता हुई, हालाँ कि एक आँख उसकी भी फूट गयी थी।

अप्रैल १९३९ ई०

नीम हकीम

एक हकीम किसी सरायमें ठहरे हुए थे। वहाँ एक ऊँट भी बँधा हुआ था। ऊँटने पास ही पड़े हुए तरबूज़को खाना चाहा तो वह उसके गलेमें अटक गया। हालत यह हुई कि न वह निगल ही सकता था न उगल ही सकता था। बेचैनीके मारे वह ज़मीनमें लोट-पोट होने लगा। ऊँटवाला ऊँटकी इस हालते-ज़ारको देखकर बहुत घबराने लगा। हकीमजीने ऊँटको तरबूज़ खाते देख लिया था। अतः उन्होंने पन्द्रह रु० ऊँटवालेसे लेकर ऊँटकी गरदन के नीचे एक पत्थर रखकर और एक ऊपरसे मारकर तरबूजको तोड़ दिया और ऊँट राज़ी-खुशी बलबल करता हुआ खड़ा हो गया। हकीमजीके नौकर-ने देखा तो उसके मुँहमें भी पानी भर आया। उसने १५ रु० मासिकपर नौकर रहनेके बजाय मिनिटोंमें पन्द्रह रु० कमा लेना बुद्धिमत्ता समझकर नौकरी छोड़ दी। और एक शहरमें 'गलेके फोड़ोंके विशेषज्ञ' का साइन-बोर्ड लगाकर जम गया। संयोगकी बात, शहरके रईसकी पत्नी गलेके फोड़ेसे मरणासन्न थी। योग्य डॉक्टर इलाज क़र रहे थे कि किसीने इनकी भी सूचना दी तो बुलाये जानेपर पाँच मिनिटमें शर्तिया आराम कर देनेकी बात कही। मरता क्या न करता, लोगोंने विश्वास कर लिया। हकीम-जीने पन्द्रह रु० लेकर वही करतब दिखाया जो वे सरायमें देख चुके थे। ऊँट तो बच गया था, परन्तु सेठानीने आँखें फेर दीं। लोगोंने पूछा कि, "मूर्ख, तूने यह क्या किया?" तो नीम हकीम सहज स्वभावसे बोले, "बड़े हकीमजीने तो ऊँट इसी प्रकार अच्छा किया था।"

जनवरी १९५० ई०

बदपरहेज़

एक सेठको खाँसी थी। खाँसीमें दही अत्यन्त नुक़सानदेह है, परन्तु सेठजी दही खानेसे बाज़ नहीं आते थे। उन्हें दहीका ऐसा चसका लगा हुआ था कि समझानेपर भी नहीं मानते थे। रोग बढ़ता ही जा रहा था। नित नये वैद्य-हकीम आते, परन्तु सेठजीकी बदपरहेज़ीसे घबराकर भाग खड़े होते। एक अन्य वैद्यजीने सेठजीकी यह क़ैफ़ियत सुनी तो उन्होंने सेठजीको नीरोग कर देनेका विश्वास दिलाया; परन्तु शर्त यह रखी कि जबतक इलाज चलेगा दही अवश्य खाना पड़ेगा। सेठजीको और क्या चाहिए? मनके अनुसार वैद्य पाकर बड़े प्रसन्न रहने लगे और ख़ूब इनाम आदि देने लगे। वैद्यजी भी अवसरकी खोजमें रहने लगे और ऐसी दवा देते रहे जिससे रोग अधिक न बढ़ने पाये, क्योंकि दही खानेके कारण रोग घटनेका तो कोई उपाय ही न था। एक रोज़ सेठजी मुसकराकर बोले, "देखो यह भी तो वैद्य हैं जो दही खाना लाज़िमी बताते हैं। इनके इलाजसे रोग घटा नहीं तो बढ़ा भी नहीं। पुराना रोग जब ठहर गया है तो एक दिन नष्ट भी हो ही जायेगा।"

वैद्यजी बात बनती देखकर बोले, "सेठजी, खाँसीमें दही खानेसे तीन लाभ हैं। घरमें चोरी नहीं होती, कुत्ता कभी नहीं काटता और बुढ़ापा कभी नहीं आता!"

सेठजीने कारण बतानेकी उत्सुकता प्रकट की तो बोले, "रात-भर खाँसते रहनेसे घरमें चोर नहीं घुसते। निर्बलताके कारण लाठी रखनी पड़ती है, अतः कुत्ते पास नहीं फटक सकते और जवानीमें ही मर जानेसे बुढ़ापा नहीं आ सकता।"

सेठजीकी नानी मरे जो फिर कभी दही खाया हो।

फ़रवरी १९४० ई०

अफ़ीमचीकी होशयारी

देहातके एक अफ़ीमची दिल्ली सैर करने आये और लक्ष्मीनारायणकी धर्मशालामें ठहर गये। रातको खुश्कीने ज़ोर किया तो धर्मशालाके बाहर-वाले हलवाईसे आठ आनेकी रबड़ी मलाई खायी। अफ़ीमचीने रुपया दिया तो हलवाईके पास रेज़गारी नहीं थी। लाचार बाक़ी अठन्नी अगले रोज़ ले जाना तय हुआ। अफ़ीमचीने होशयारी यह की कि दुकानकी ठीक-ठीक पहचान कर ली ताकि दूसरे रोज़ पहचाननेमें भूल न हो। अगले रोज़ अफ़ीमची एक मुसलमान दरज़ीसे जाकर बोला,

"लाला, कल रातके आठ आने वापस दिलाइए।"

"कैसे आठ आने ?"

"कल रातको एक रुपया देकर आठ आनेको रबड़ी ली थी। उस वक़्त रेज़गारी न होनेसे आपने आज ले जानेको कहा था। क्या रातकी अठन्नी इतनी जल्दी भूल गये ?"

दरज़ी झल्लाकर बोला, "अमाँ, अन्धे हो, यह दरज़ीकी दुकान है या हलवाईकी ?"

"क्या खूब ? अठन्नीके लिए पेशा बदला-सो-बदला, मज़हब भी बदल बैठे। भई, यह शहरवाले भी कैसे चालाक होते हैं !"

लोगोंने झगड़ेका सबब पूछा तो अफ़ीमची निहायत संजीदगीसे बोला,

"अरे साहब, मैं क्या दीवाना हूँ जो परदेशमें नाहक झगड़ा मोल लूँगा ? रातको यह साँड जिस दुकानके आगे बैठा था, वहींसे मैंने रबड़ी ली थी, देख लो ग़रीब अभीतक वहीं बैठा हुआ है।"

फ़रवरी १९५७ ई०

मौलवीकी दाढ़ी

मौलवी लतीफ़को बीमारीकी वजहसे जब लम्बी छुट्टी लेकर घर जाना पड़ा तो अपनी एवज़ीमें एक नये मुल्लाको छोड़ गये। ताकि वापसीपर गाँवकी मस्जिदका अधिकार बरक़रार बना रहे। मगर नये मुल्ला एक ही काइयाँ थे। अपनी मीठी ज़बानसे लोगोंपर ऐसी मोहिनी डाली कि हरदिलअज़ीज़ बन गये। मौलवी लतीफ़ ड्यूटीपर वापस आये तो उन्होंने गाँवका नक़शा ही बदला हुआ पाया। गाँववाले उनकी ख़ैरो-आफ़ियत पूछनेके बजाय उनसे आँख चुराने लगे।

मौलवी लतीफ़ भी पुराने घाघ थे। मौक़ामहल देखकर वे भी नये मुल्लाकी तारीफ़ोंके पुल बाँधने लगे। जुम्मेकी नमाज़को गाँवके सब मुसलमान नमाज़ पढ़ने आये तो उनके सामने नये मुल्लाको मुख़ातिब करते हुए बोले,

"मौलाना, मैं तो आपको वली समझता हूँ। गाँव-गाँवमें आपकी करामातोंकी धूम मची हुई है। जिसे भी आपने अपनी दाढ़ीका एक बाल दे दिया, निहाल हो गया। कंगाल, मालामाल हो गये। बेऔलादोंकी गोदें भर गयीं। नाबीने आँखवाले हो गये। बूढ़ोंको जवानी मिल गयी। रोगी नीरोग हो गये। ख़ुदाके वास्ते मुझे भी एक बाल अता फ़रमाइए ताकि बतौर तबर्रुक अपनी जानसे भी ज़्यादा अज़ीज़ रख सकूँ और मनकी मुरादें पूरी कर सकूँ।"

मुल्लाजीने तारीफ़ सुनी तो बाँछें खिल गयीं। आव देखा न ताव, चट एक बाल नोचकर मौलवी लतीफ़को मरहम्मत फ़रमा दिया। एक बालका देना था कि गाँववाले भी इसरार करने लगे। मुल्लाजीको असमंजसमें पड़ा देख सब एकबारगी टूट पड़े, और इस नेमतसे कहीं कोई महरूम न रह जाये, इसी आपा-धापीमें मुल्लाजीकी दाढ़ी ठूँठ हो गयी।

दाढ़ीविहीन मुल्लाजी बोरिया-बधना बाँधकर रातको खिसक गये और मौलवी लतीफ़की उस्तादीका लोहा मानते गये।

फ़रवरी १९५० ई०

मुशाअ़रेमें परिहास

शिमलेमें एक आलीशान मुशाअ़रा हो रहा था। पंजाबके प्रीमियर सर सिकन्दर हयातखाँ मुशाअ़रेके सभापति थे ? ख़िलाफ़त आन्दोलनके मशहूर नेता मुहम्मदअली मर चुके थे और उनके छोटे भाई शौकत अली उस मुशाअ़रेमें मौजूद थे। जब आपके ग़ज़ल पढ़नेका नम्बर आया तो ग़ज़ल पढ़नेसे पूर्व आपने श्रोताओंसे कहा, "हज़रत, मेरे वालिद मुहतरिम भी शाइर थे और 'गौहर' तखल्लुस फ़रमाते थे। मेरे बड़े भाई मुहम्मदअली भी शाइर थे और 'जौहर' तखल्लुस रखते थे और मैं भी शाइरी करता हूँ। और........"

बीचमें ही एक श्रोता बोला, 'शौहर'। गौहर, जौहरकी तुकमें शोहरका मज़ाहिया तखल्लुस ईजाद करनेपर जनतामें हँसीके फव्वारे छूट पड़े। खुद मौलाना भी इस फ़ब्तीसे काफ़ी देर तक हँसते रहे और फ़ब्ती कसनेवालेकी काफ़ी तारीफ़ करते रहे।

शौकतअली अपने भाईके मरनेके बाद बुढ़ापेमें एक अमरीकन लेडीसे शादी करके ताज़े-ताज़े शौहर बने थे। गौहर, जौहरके तुकके साथ शौहरमें यह व्यंग्य भी निहित था।

फ़रवरी १९५० ई०

वहमकी दवा

सुनते हैं कि वहमकी दवा लुक़मान हकीमके पास भी नहीं थी। वहम-का रोग असाध्य है। जिसे यह रोग हुआ, उसे फिर कोई इस रोगसे मुक्त नहीं कर सकता, परन्तु यह बात सोलह आने सही नहीं, वहमकी भी दवा है। एक अफ़ीमची सेठके वहमको दूर करके एक नौकरने किस तरह विश्वास प्राप्त किया, नीचेके उदाहरणसे मालूम किया जा सकता है।

एक अफ़ीमची सेठको वहमके रोगने बुरी तरह घेर लिया था। उनको अपनी पत्नी और सन्तानपर भी विश्वास नहीं था। नित नयी व्यवस्था बनाते थे, नौकर बदलते थे, परन्तु सन्तोष न होता था। हर कामके लिए जुदे-जुदे कर्मचारी नियुक्त थे, फिर भी सभी कार्य बेढंगे चलते थे।

अफ़ीमची सेठको सबसे बड़ी शिकायत यह थी कि रातको जब वे पीनकमें होते थे, तब मलाईदार दूध उन्हें न पिलाकर लोग स्वयं पी जाते थे। आखिर तंग आकर सिर्फ़ इस कार्यके लिए ही उन्होंने एक नौकर रखा। आदेश दिया गया कि रोज़ाना रातको चार पैसेका दूध मलाईदार सेठजीको पिला दिया करे। दूध उन दिनों तीन आने सेर मिलता था। अतः नौकर एक पैसा अपनी गाँठमें रखकर तीन पैसेका दूध पिलाने लगा। दूसरा नौकर रखा तो वह दो पैसेका दूध पिलाता और एक-एक पैसा दोनों नये-पुराने नौकर बाँट लेते। तीसरा नौकर रखा तो वह तीन पैसे परस्पर बाँटकर एक पैसेका ही दूध पिलाता। लाचार होकर चौथा नौकर रखा गया तो तीनों नौकर हैरान कि तीन पैसे तो यह हमको दे देगा और एक पैसा स्वयं भी रखना चाहेगा, फिर यह दूध कैसे पिलायेगा? चौथा नौकर पूरा चंट था। इस कानाफूसीकी भनक उसके कानमें गयी तो बोला, "मुझे क्या अपने जैसा बुद्धू समझते हो? देखते जाओ मालिकको किस प्रकार प्रसन्न करके अपनी नौकरी स्थायी बनाता हूँ।"

रातको ये हज़रत हलवाईकी दुकानसे खाँसीकी दवा खानेके बहाने तनिक-सी मलाई माँग लाये और पीनकमें ऊँघते हुए सेठजीकी मूँछोंपर लगा दी। प्रातः सेठजी उठे और ओठोंपर जो जीभ लगी तो मलाईका स्वाद पाकर बाग़-बाग़ हो गये। बोले, "बड़े भाग्यसे यह ईमानदार नौकर मिला है। देखो तो सही, दूध कैसा मलाईदार पिलाया कि मलाई अभीतक मूँछोंपर लगी हुई है।"

मई १९५० ई०

हुनरकी कमी

एक गाँवमें एक बुड्ढा रंगरेज़ रहता था। उसे काला, पीला, हरा और लाल ये चार ही रंग रँगने आते थे। गाँवकी बहू-बेटियाँ कभी धानी, प्याज़ी, किसमिसी, सुर्मई, ऊदी, मोरकण्ठी वग़ैरह रँगनेको ज़िद करतीं, तो बुड्ढा कहता, "मेरी बेटीके गोरे बदनपर खिलेंगे तो काले, पीले, हरे और लाल रंग ही। बाक़ी यूँ कहो जौन-सा रंग रँग दूँगा।" बहू-बेटियाँ नित नये रंगकी फ़रमाइश करतीं, मगर रँगकर आते वही रंग जो बुड्ढा रँगना जानता था।

वीर, दिल्ली; १२ जनवरी १९४० ई०

जरूरतके मुताबिक़ ईमान

एक मुसलमान दरज़ीने रोग-शय्यापर पड़े हुए स्वप्न देखा कि वह सच-मुच मर गया है और क़ब्रमें दफ़ना दिया गया है। क़ब्रमें हरी, पीली, लाल, नीली, रंग-बिरंगकी हज़ारों क़िस्मकी उसे झण्डियाँ टँगी हुई दिखायी दीं। पासमें खड़े हुए फ़रिश्तेसे दरयाफ़्त करनेपर मालूम हुआ कि दरज़ीके पेशेको करते हुए जिस-जिस रंगका कपड़ा चुराया था, उसकी ये गवाहियाँ देंगी, ताकि अल्लाहमियाँ उन्हें देखकर गुनाहोंकी जाँच करके सज़ा दे सकें। दरज़ीने सज़ाकी बात सुनकर घबराहटमें ज्यों ही 'या अल्लाह तौबा' कहा कि उसका स्वप्न भंग हो गया। धीरे-धीरे अच्छा होनेपर जब वह दुकानपर आया तो शागिर्दोंको हुक्म दिया कि, "मैं अगर किसी कपड़ेमें-से कुछ बचाना चाहूँ तो तुम लोग 'उस्तादजी, झण्डी' कह दिया करो।" चुनांचे जब कभी उस्तादजीकी नीयत बद होती, हुक्मके मुताबिक़ शागिर्द लोग 'उस्तादजी, झण्डो' कह देते और उस्तादजीकी बेईमान रूह सज़ाके खौफ़से काँप जाती। एक बार किसी जजकी अचकनका बहुत ही बढ़िया कपड़ा आया। देखते ही उस्तादजीके मुँहमें पानी भर आया। एक वास्कट-के पेश निकालनेको ज्यों ही क़ैंची चलायी कि हस्बमामूल शागिर्दोंने 'उस्तादजी, झण्डी' की आवाज़ फेंकी। शागिर्दोंकी इस रोज़ानाकी नसीहतसे उकताकर उस्तादजी बोले, "अबे बेवक़ूफ़ो, इस रंगका कपड़ा वहाँ नहीं था" और वास्कटके पेश निकाल लिये।

वीर, दिल्ली; १२ जनवरी १९४० ई०

व्यर्थकी रार

दो ग्रामीण मित्र थे। एक रोज़ एकने कहा, "हम तो अबकी बार ईख बोयेंगे।"

दूसरा बोला, "ईख तू बोना, हम तो भैंस लायेंगे।"

पहला बोला, "भैंस तो तू बेशक ले आना, मगर बाँधकर रखना, ऐसा न हो कि मेरी ईख चर जाये।"

दूसरा तमककर बोला, "भाई जानवर है, आदमी तो है नहीं, जो कहा मान जाये, उसके मनमें आयेगी तो ईख खायेगी ही।"

यह सुना तो पहला झल्लाकर बोला, "तो बस अब तू भैंस ला चुका।"

दूसरेने भी मुँह मटकाकर उत्तर दिया, "तो बस तू भी ईख बो चुका।"

पहलेने चट उँगलीसे ज़मीनपर लकीरें काढ़ दीं और बोला, "ले मैं तो ईख बो चुका, अब तू अपनी भैंस छोड़।"

दूसरेने वहींसे एक कंकरी ले उन लकीरोंमें डाल दी और कहा, "ले, मैं तो अपनी भैंस छोड़ चुका, कर ले क्या करता है।"

दोनों एक-दूसरेपर टूट पड़े और खूनम-खून हो गये।

जून १९४० ई०

लक्ष्मीकी उपासना

एक सेठ साहब गद्दीपर बैठे हुए पानकी पीक बार-बार सोनेके उग़ाल-दानमें थूक रहे थे। एक लक्ष्मी-उपासक भी वहाँ बैठा हुआ था। जब सेठजीका बार-बार थूकना उससे सहन न हुआ तो उग़ालदानको लात मारकर बोला, "सुसरी, यहाँ तो थुकवानेमें भी नहीं शर्माती और मैं जनम-भर पूजा करते-करते थक गया तब भी न आयी।"

सेठ साहबने यह हरकत देखी तो हँसकर बोले, "भोले भाई, लक्ष्मी-की उपासना करनेसे लक्ष्मी नहीं आती, लक्ष्मीको ठुकरा देनेवाले वीतराग प्रभुकी उपासनासे लक्ष्मी तो क्या तीन लोकका राज्य पाँव चूमनेसे नहीं शर्माता। लक्ष्मीको जितना पूजो उतना ही दूर भागती है और जितना ही ठुकराओ (दान करो) उतना ही चिमटती है। क्या स्वामी रामतीर्थका यह शेर नहीं सुना,

भागती फिरती थी लक्ष्मी, जब तलब रखते थे हम।
अब हमें नफ़रत हुई, वह बेक़रार आनेको है॥

मई १९४० ई०

कठोर मालिक

एक ज़मींदार हिसाब-किताबके बड़े सख्त थे। नौकरोंसे ज़रा भी नुक़सान होता तो उसका मुआवज़ा वसूल कर लेते। एक दिनकी भी ग़ैर-हाज़िरी होती तो नागा काट लेते। एक रोज़ बैलगाड़ीमें बैठकर ज़मीदारी वसूल करने जा रहे थे। नौकर पीछे-पीछे पैदल चल रहा था कि ज़मींदार-को रास्तेमें शत्रुओंने घेर लिया। ज़मींदार साहबने सहायताके लिए नौकर-को आवाज़ दी तो वह बोला, "मुझे आज छुट्टीपर समझिए, आजकी भी नागा काट लीजिएगा।"

सेवाधर्म, १९२७ ई०

बादशाहकी रामायण

एक बादशाह और उसका वज़ीर कहीं जा रहे थे कि एक गाँवमें पण्डितजी कथा बाँच रहे थे। बादशाहने कथाका नाम पूछा तो बतला दिया गया कि रामायणसे राजा राम-सीताकी कथा कही जा रही है। बादशाह-के यह बरदाश्त कहाँ कि उसके राजमें किसी अन्य राजाकी कथा सुनी जाये। उसने पण्डितजीको हुक्म दिया कि आइन्दा हमारी रामायण कहा करो।

पण्डितजी भी पूरे घाघ थे। उन्होंने बादशाही रामायण बनानेके लिए छह माहका समय और मुँहमाँगा इनाम ले लिया। पाँच माहके पश्चात् दरबारमें हाज़िर होकर अर्ज़ की,

''जहाँपनाह, रामायण लगभग तैयार है। सिर्फ़ एक बात लिखनी रह गयी है। राजा रामकी रानी सीताको रावण चुरा ले गया था। आप-की बेगमको कौन उड़ा ले गया है, बस हुज़ूर उस मूज़ीका नाम बतला दें, ताकि रामायणमें वह दर्ज कर दूँ।''

बादशाहने सुना तो बड़ा चकराया और घबराकर बोला, ''ना बाबा ना, हमें माफ़ करो। हम बाज आये ऐसी रामायण बनवानेसे।''

फरवरी १९५१ ई०

जाटकी कृतज्ञता

एक मजिस्ट्रेटका नाम चिराग़अली था। उसने एक जाटको निर्दोष समझकर मुक्त कर दिया तो जाट कृतज्ञता प्रकट करते हुए बोला,

''अरे साहब, तेरा चिराग़अली नाम किस मूरखने रखा है? तू तो मसालअली है।''

जनवरी १९५१ ई०

बुढ़िया पुराण

"मैं कितनी बार भौंक चुकी हूँ, मगर आप हैं कि कानपर जूँ तक नहीं रेंगती।"

"आखिर माजरा क्या है? अभीतक तो अच्छी खासी चहकती-फुदकती घूम रही थीं, यह यकायक भौंकनेपर उतारू क्यों हो गयीं!"

"भौंकूँ न तो क्या करूँ? बार-बार कहा कि एक बिल्ली पकड़वाकर मँगवा दीजिए, मगर आपकी सुने बला! मैं कहती हूँ बिल्ली अगर न आयी तो दुलहिनको डोलेसे नहीं उतारूँगी। फिर न कहना कि मुझे जताया तक भी नहीं और सबके सामने आबरू खराब कर दी।"

"अगर तुम इसी तरह भौंकती रही तो बिल्ली यहाँ ठहरेगी भी क्योंकर? विवाह-शादीके मौक़ोंपर लोग-बाग़ बिल्लीको घरसे भगा देते हैं और तुम हो कि उसे मँगानेपर ब-ज़िद हो। आखिर बात क्या है?"

"बात क्या होती? कई बार कहा कि औरतोंके काममें दस्तन्दाज़ी न दिया कीजिए, मगर आप हैं कि बाज़ नहीं आते! मैं ही क्या अनोखी मँगवा रही हूँ। हमारे खानदानमें यह रस्म हमेशासे होती चली आ रही है। क्या भूल गये? जब मैं डोलेसे उतरी थी, तो मेरा मुँह दही-बूरेसे बिटारनेके लिए सासजीने नादके नीचेसे दही देनेको आपसे कहा था। और जब आपने नाद उघाड़ी तो दहीके बदले वहाँ मरी हुई बिल्ली पड़ी थी।"

"वाह क्या कहने हैं तुम्हारी इस याददाश्तके? हम तो क़ायल हो गये तुम्हारे इस बुढ़िया पुराणके। बात तो दरअस्ल यह थी कि बिल्ली नादके नीचे दही चाटनेको गयी और उसके धक्केसे नाद उसीके ऊपर गिर पड़ी। माँको शादीके भीड़-भड़क्केमें देखनेका अवसर न मिला और बिल्ली

वहीं दबकर मर गयी। अब तुम हो कि उस लकीरकी फ़क़ीर बनी हुई हो ?"

"आपको तो हर बातमें खुरपेच निकालने आते हैं। मगर मैं एक न सुनूँगी, आपको बिल्ली मँगाकर देनी होगी। मैं तो अपने इकलौते लालके विवाहमें वह सब रस्म अदा करूँगी जो मैंने देखी और सुनी है।"

जनवरी १९१५ ई०

गुड़ खायें, गुलगुलोंसे परहेज़

एक कर्मकाण्डी यात्रीको चलते-चलते चमारोंके गाँवमें रात हो गयी। भूखके कारण पेटमें चूहे कबड्डी खेल रहे थे, परन्तु चमारोंके यहाँ ख़ानेको जी न चाहता था। आखिर चमारोंके अनुरोधपर दलिया स्वयं पकाकर खा लेना मंज़ूर कर लिया। दलिया पकाकर एक लकड़ीकी छीपटीसे खाने लगे तो किसीने पूछा,

"महाराज, हाथसे न खाकर दलिया छीपटीसे क्यों खा रहे हैं ?"

कर्मकाण्डी गरम होकर बोले, "जाने नांय है यह चमारिनके हाथको पिसो भयो है। याके हाथ लगाकर धरम भ्रष्ट थोड़ों ही होनो है ?"

जनवरी १९५१ ई०

गधा कौन, जौहरी या कुम्हार

एक जौहरी जंगलसे गुज़र रहा था कि उसने एक गधेके गलेमें बेश-क़ीमत हीरा बँधा हुआ देखा। वह समझ गया कि गधेवाला यह हीरा कहीं पड़ा पा गया है और इसे चमकीला पत्थर समझकर गधेके गलेमें बाँध दिया है। अतः उसने गधेवालेसे चतुराईसे पूछा, "क्यों बे गधेवाले, इस पत्थरका क्या लेगा ?"

"हुज़ूर जो चाहें दे दीजिए। ग़रीब आदमी हूँ।"

"नहीं, तू ही बता क्या लेगा।"

"हुज़ूर, आठ आने दे दीजिए।"

"आठ आने बहुत हैं, चार आने लेना है तो यह ले।"

गधेवाला छह आने तकमें देनेको तैयार हो गया, परन्तु जौहरी चार आनेमें ही खरीदना चाहता था। वह थोड़ी दूर इस खयालसे आगे बढ़ गया कि गधेवाला झख मारकर उसे चार आनेमें ही लेनेको वापस बुलायेगा।

जौहरी थोड़ी दूर गया ही था कि एक दूसरा जौहरी उधरसे गुज़रा और वह मुँहमाँगा दाम देकर चलता बना! पहले जौहरीने देखा तो वह झपटकर आया और गधेवालेसे बोला, "क्यों रे वह पत्थर कितनेमें बेच दिया ?"

"हुज़ूर यह देखो एक रुपया उस पत्थरका मिला है।"

"तू बड़ा गधा है। लाखोंका हीरा एक रुपयेमें बेच दिया।"

"हुज़ूर, मैं अगर गधा न होता तो उसे पत्थर समझकर गधेके गलेमें क्यों बाँधता ? मगर हुज़ूरको क्या कहूँ जो पारखी होते हुए भी पत्थरकी क़ीमतमें भी हीरा लेना मुनासिब न समझा ?"

मार्च, १९५१ ई०

ससुरालका नाई

एक बार ससुरालके नाईने आकर सूचना दी कि, "तुम्हारी स्त्री विधवा हो गयी है।" सुना तो शेखचिल्लीने आपा पीट लिया। रोनेका शोर सुनकर निठल्ले पड़ोसी इकट्ठे होकर रोनेका कारण पूछने लगे। कारण बतलानेपर हँसते हुए बोले, "अजी तुम भी अजीब आदमी हो, अरे भई जब तुम जीवित हो, तब तुम्हारी स्त्री विधवा कैसे हो सकती है?" शेखचिल्लीने कहा, "यह तो मैं भी जानता हूँ कि पतिके स्वर्ग गये बग़ैर स्त्री बिधवा नहीं होती, पर क्या करूँ? ससुरालका नाई होनेके कारण यह भी तो विश्वासपात्र है, इसकी बातपर भी तो यक़ीन करना लाज़िमी है।"

वीर, दिल्ली; ३ फ़रवरी १९४० ई०

ज़िद

एक जाट बोला, "अगर कोई पैंतीस और पैंतीस सत्तर गिना दे तो उसे मैं अपनी भैंस दे दूँ। जाटनी घबराकर बोली, "अरे वाह! क्या भंग पी ली है? पैंतीस और पैंतीस सत्तर तो होते ही हैं। भैंस दे दोगे तो बाल-बच्चे क्या बड़का दूध पियेंगे?" जाट बोला, "तू घबराती क्यों है? पैंतीस और पैंतीस सत्तर होते हैं यह तो मैं भी जानता हूँ, परन्तु मैं किसीके सामने हाँ करके दूँगा, तभी न भैंस लेगा! मैं तो ना-ना ही करता रहूँगा।"

वीर, दिल्ली; १३ जनवरी १९४० ई०

रोगी डॉक्टर

एक मनुष्यको नेत्रोंका ऐसा रोग था कि उसे प्रत्येक वस्तु दो-दो दिखायी देती थी। संयोगकी बात कि जिस डॉक्टरके पास वह इलाजको पहुँचा, उसे हर चीज़ चार-चार दिखायी देती थी। डॉक्टरने मुसकराकर आनेका सबब पूछा तो रोगीने कहा, "हुज़ूर, हमको हर चीज़ दो-दो दिखायी देती है।"

डॉक्टरने धीरज बँधाते हुए कहा, "कोई चिन्ताकी बात नहीं, इलाज हो जायेगा। क्या तुम चारोंको यही रोग है?"

रोगी असल हक़ीक़त समझ गया। वह माथेपर हाथ मारकर बोला, "धन्य भाग! मेरी चिन्ता छोड़कर पहले आप अपना इलाज करायें।"

५ मार्च, १९५१ ई०

पाँचवाँ सवार

देहलीसे चार घुड़सवार लाहौरको जा रहे थे कि लाहौरके नज़दीक पहुँचनेपर एक गधेवाला भी साथ हो लिया। लाहौर पहुँचनेपर किसीने पूछा,

"क्यों भई सवारो, आप लोग कहाँसे चले आ रहे हैं?"

घुड़सवार मुँह खोलने भी न पाये कि गधेवालेने आगे बढ़कर कहा,

"हम पाँचों सवार देहलीसे आ रहे हैं।"

गधेवालेकी इस मूर्खतापर कि वह भी अपनेको सवारोंमें समझता है, सब हँस पड़े। जो आदमी अपनी हैसियत, लियाक़त, ताक़त वग़ैरहसे ज़्यादा बढ़कर बात करता है, उसके लिए तभीसे यह मिसाल बन गयी है कि, "लो भई, ये भी पाँचवें सवारोंमें हैं।"

वीर, दिल्ली; १० फ़रवरी १९४० ई०

मरते-मरते भी कुटिलता

छिद्दा बाभन जब मरने लगा तो अपने लड़कोंको बुलाकर बोला, "तुम लोगोंने मेरा आज तक कभी कोई कहा नहीं माना। आज मैं परलोक जा रहा हूँ। मेरी चिताको आग देनेका उसी लड़केको अधिकार होगा जो मेरी अन्तिम अभिलाषा पूरी करेगा। जो प्रतिज्ञा नहीं करेगा, वह मेरी अरथीको हाथ भी नहीं लगा सकेगा ?"

छिद्दा बाभनके गुणों और स्वभावसे जो लड़के परिचित थे, वे तो चुप रहे, परन्तु एक परदेशमें रहनेवाला पुत्र झाँसेमें आकर जवानीके जोशमें अभिलाषा-पूर्त्ति करनेकी प्रतिज्ञा कर बैठा। छिद्दाने उसके कानमें कहा, "मेरे मरनेपर मेरी लाशके टुकड़े करके पड़ोसियोंके घरोंमें डालकर पुलिसमें रपट लिखा देना कि इन लोगोंने जीतेजी तो मेरे पिताको कष्ट दिये ही, मरनेपर भी शरीरके अंग-अंग काटकर ले गये। मुझे शरीरके छिन्न-भिन्न होनेसे क़तई कष्ट न होगा, अपितु पड़ोसियोंकी जो फ़जीहत होगी, उसकी कल्पना मात्रसे मेरा रोम-रोम पुलकित हो रहा है।"

२७ जनवरी १९४० ई०

मुँहके मीठे

एक सज्जनसे दीवालीके अवसरपर कमरेमें झाड़-फ़ानूस टाँगनेके लिए एक साहबने सीढ़ी (नसेनी) माँगी तो बोले, "अरे साहब, सीढ़ी देनेमें भला क्या एतराज़ होता ? मगर क्या करें, श्रीमतीजी सन्दूक़में बन्द करके ताली अपने साथ पीहर ले गयी हैं।" किसीने उत्सुकतासे पूछा, "अरे भाई, क्या इतनी लम्बी-चौड़ी सीढ़ी भी सन्दूक़में बन्द हो सकती है ?"

वे बोले, "तो क्या आपकी रायमें कह देना चाहिए था कि सीढ़ी नहीं देते ? भई हमसे तो इस तरह नटा नहीं जाता।"

लोग समाज-सेवाकी बड़ी-बड़ी बातें बनाते हैं। समाजपर मर-मिटनेके लिए प्रोत्साहन देते हैं। 'यह करो' और 'वह करो' के आदेश देते हैं। मगर जब अवसर पड़नेपर अमल करनेको उनसे कहा जाता है तो इनकार भी नहीं करते और भलेके-भले बने रहते हैं। किस सादगीसे फ़रमाते हैं,

जान से बढ़के है मज़हब से मुहब्बत हमको।
क्या करें, काम से मिलती नहीं फ़ुर्सत हमको॥

वीर, दिल्ली; ३ फ़रवरी १९४० ई०

ऐंठकी शान

सास-बहूमें झगड़ा होता तो सास रूठकर बाहर जा बैठती और बहूके मनानेपर घरमें आती। रोज़ानाके मनानेसे तंग आकर बहू एक रोज़ चुप्पी साध गयी। इन्तज़ार देखते-देखते सासका भी धीरज छूटने लगा। दिन-भर भूखी रहनेके अतिरिक्त जाड़ेकी रातमें बाहर पड़े रहनेके ख़यालसे उसका रूठना पानी-पानी होने लगा। वह ऐसा उपाय सोचने लगी कि बाइज़्ज़त घरमें प्रवेश किया जा सके और खा-पीकर आरामसे सोया भी जा सके। वह तरकीब सोच ही रही थी कि जंगलसे चरकर भैंस और उसकी पाड़ी घरमें घुसने लगीं। चट उसने पाड़ीकी पूँछ पकड़ ली और बड़े नखरे दिखाती हुई, पाँव पटकती हुई, मचलती हुई-सी यह कहते हुए अन्दर चली गयी,

"मान जा, मेरी पाड़ी, मैं अन्दर नहीं जाती।" गोया पड़िया उसे जबरन घरमें खींचे ले जा रही थी।

नीलका भैंसा

दिल्लीके चाँदनी चौकमें एक मुहल्लेका नाम नीलका कटरा है। इसके बाहर बहुत-सी दुकानें हैं। देहातमें कटरा भैंसके बच्चेको भी कहते हैं। एक बार किसी जाटसे इस मुहल्लेके पासवाले व्यापारीकी जान-पहचान हो गयी। बातचीतके सिलसिलेमें उसने कहा, "चौधरी, कभी दिल्ली आओ तो नीलके कटरेके पास हमारे यहाँ भी पधारना।"

चौधरी दो-तीन बरस बाद दिल्ली आया तो उसे उस व्यापारीसे मिलनेका भी ख़याल आया। उसने यह समझकर कि दो-तीन बरसमें कटरा भैंसा हो गया होगा, नीलके भैंसेका पता पूछा। नीलके भैंसेका पता कौन बताता? आख़िर एक आदमीने कहा, "भई नीलका कटरा तो ये सामने है। नीलके भैंसेका तो हमने नाम भी नहीं सुना।" चौधरीने भोलेपनसे पूछा, "कटरा तो वह दो-तीन साल पहले ही था, क्या अभीतक वह भैंसा न हुआ होगा?"

फ़रवरी १९५० ई०

ख़ुदा समझिए

वेश्याओंके साज़िन्दे अकसर मुसलमान होते हैं और ये मीरासी कहलाते हैं। पुश्त-दर-पुश्त यही पेशा करते रहनेसे इनकी मीरासी एक जात ही बन गयी है। यह क़ौम मुसलमानोंमें भी नीच समझी जाती है। पंजाबमें इनसे सम्बन्धित अनेक लतीफ़े मशहूर हैं।

एक दफ़ेकी बात है कि कचहरीमें एक मीरासी गवाही देनेके लिए पेश हुआ। अपना और बापका नाम बता चुकनेके बाद जब न्यायाधीशने उससे क़ौम पूछी तो, यह सोचकर कि, "यहाँ मुझे कौन जानता है, मीरासी बताकर कौन अपनेको ज़लील करे" बड़े ठाटसे अपनी क़ौमियत 'शैख़' बता दी। संयोगसे वहाँ कोई शैख़ भी मौजूद था, और उसे भी गवाही देनी थी। मीरासीके बाद तुरन्त ही उसकी बारी आयी। जब उससे क़ौम पूछी गयी तो जलकर बोला, "अगर यह कमीन 'मीरासी' अपनेको शैख़ समझता है तो फिर मुझे तो ख़ुदा समझिए।"

मार्च १९५१ ई०

टिकिट बाबूका फूफा

रामू और छोटू जाट रोहतकसे दिल्ली जानेको स्टेशनपर पहुँचे तो छोटूने अपने टिकिटके दाम भी रामूको दे दिये। रामूने पहले अपना टिकिट ख़रीदा। दोनों टिकिट एक साथ इसलिए नहीं ख़रीदे कि शायद टिकिटके भावमें कुछ कमती-बढ़ती हो जायें, या सम्भव है दूसरा टिकिट ही न हो और हिसाबके झंझटमें कौन फँसे?

जब रामू अपना टिकिट ले चुका तो बाबूसे बोला, "एक टिकिट छोटूका भी दे दें।" बाबू हैरान कि यह छोटू स्टेशन कौन-सा हुआ। जब ख़यालमें नहीं आया तो पूछा, "यह छोटू कहाँ है?"

रामू छोटूकी तरफ़ इशारा करते हुए बोला, "वह खड़ा तेरा फूफा।"

मई १९५० ई०

अदालत है या भाँड़ोंकी महफ़िल

एक वैश्यका नाम लाला झाऊमल था। वे सूरदास थे और अपने साथ नौकर रखते थे। एक रोज़ अदालतमें किसी मुक़दमेंके सिलसिलेमें गये हुए थे। कचहरीमें चपरासीने लालाका नाम लेकर आवाज़ दी तो इस अटपटे नामको सुनकर जजको हँसी आ गयी, और जब लाला उसकी अदालतमें पहुँचे तो जज मज़ाक़न बोला, "भई खूब आदमीका-आदमी और ईंधनका-ईंधन"।

जजके इस वाक्यको सुनकर उपस्थित वकील, मुंशी आदि सभी हँस पड़े। लालाजी एक ही हाज़िरजवाब थे। चट नौकरके मुँहपर एक हलका-सा चपत मारते हुए बोले, "क्यों बे, मैंने तुझे अदालतमें ले चलनेको कहा था या भाँड़ोंकी महफ़िलमें लानेको कहा था। चल निकाल मुझे यहाँसे।"

लाहौरका पागलख़ाना

लाहौरके पागलखानेमें एक साहब मुआयना करने गये तो एक पागलने अपनेको हज़रत मुहम्मद बताया। दर्शक उसकी इस जुरअत और खप्तपर हैरान-सा हो रहा था कि पड़ोसी पागल बोला, "नहीं, यह झूठ बोलता है, मैंने इसे पैग़म्बर बनाके नहीं भेजा"।

इसलाम धर्मके अनुसार ख़ुदाने हज़रत मुहम्मदको पैग़म्बर बनाकर अरबमें भेजा था। यानी उस दूसरे पागलका भाव यह था कि मैं ही ख़ुदा हूँ और यह मेरा भेजा हुआ नहीं है।

फ़रवरी १९५० ई०

नंगा क्या पहने, क्या रखे ?

एक देहाती दिल्ली आया तो फ़तहपुरीपर सन्दूक़ोंकी दुकानोंको निहारने लगा। दुकानदारने गाहक समझकर उसे अन्दर ले जाकर सभी क़िस्मके सन्दूक़ दिखाये और भाव बताये। दुकानमें चारों तरफ़ फिरकर देहाती जब जाने लगा तो दुकानदारने टोका,

"चौधरी, सन्दूक़ नहीं लेगा ?"

"के करूँगा ?"

"लत्ते रखना।"

"लत्ते इसमें रखूँगा तो फिर पहनूँगा तेरी ऐसी-तैसी ?"

अप्रैल १९५० ई०

घरका भेदी

कुल्हाड़ियोंसे भरी हुई गाड़ीको आते देख जंगलके दरख्त रोने लगे। एक बूढ़े दरख्तने रोनेका कारण पूछा तो दरख्तोंने उस गाड़ीकी ओर इशारा करते हुए कहा,

"इसमें भरी हुई कुल्हाड़ियाँ हमें काटकर नष्ट कर देंगी।"

बूढ़ा दरख्त मुसकराते हुए बोला, "डरो नहीं, इनके साथ बेंटेकी हैसियतमें जबतक हमारा भाई लगा न होगा, यह हमें तिलमात्र भी कष्ट नहीं पहुँचा सकतीं। यदि रावणका भाई विभीषण रामके साथ, प्रतापका भाई शक्तसिंह अकबरके साथ और पृथ्वीराजका भाई जयचन्द शहाबुद्दीन ग़ोरीके साथ न होता तो उन्हें पराजित करनेकी सामर्थ्य किसमें थी ?"

वीर, दिल्ली; ३ फ़रवरी १९४० ई०

ठग

एक ठगने किसी हलवाईको पाँच-सौ लड्डू बनवानेका आर्डर देकर दूसरे दुकानदारसे दो-सौ पचास रु० का सौदा खरीद लिया। सौदा ले चुकनेपर वह बोला, "मेरे साथ आप किसी आदमीको कर दीजिए, ताकि अपने आढ़तीसे रुपये दिलवा दूँ।" दुकानदारने सहजस्वभाव अपना आदमी उसके साथ कर दिया। ठग उस आदमीको हलवाईकी दुकानपर ले जाकर बोला, "दो-सौ पचास इनको गिनकर दे दीजिए और दो-सौ पचास मैं खुद ले जाऊँगा।"

हलवाईके 'बहुत अच्छा' कहनेपर ठग तो चलता बना। जब हलवाई दो-सौ पचास लड्डू थालमें लगाकर दुकानदारके आदमीको देने लगा तो वह आदमी भी चक्कर खाया। ग़रज़ बहुत कुछ लड़ने-झगड़नेपर समझमें आया कि उस ठगने दोनों ही दुकानदारोंको बेवक़ूफ़ बनाया।

नवयुग, दिल्ली; १९३३ ई०

उचक्का

दिल्लीसे क़रीब ग्यारह मीलकी दूरीपर कुतुब साहब (महरौली)में सन् २० से पूर्व फूलवालोंकी सैर होती थी। यह दिल्लीका सबसे बड़ा और सोफ़ियाना मेला समझा जाता था। ज़रा-से गाँवमें लाखोंकी भीड़ होती थी। रंगीन मिज़ाज, ऐय्याश, शौक़ीन और तमाशबीनोंका यहाँ जमघट लग जाता था। मंगलामुखी भी अपने-अपने हथियारोंसे सुसज्जित होकर आती थीं। ग़रज़ हर क़ौम, हर मज़हब, हर रंग, हर मिज़ाज और हर तबीयतका आदमी इस मेलेमें शरीक होता था। अपने ढंगका यह एक ही मेला होता था। अबतक इस मेलेकी याद रंगीनमिज़ाजोंकी तबीयतों-को तड़फाये बग़ैर नहीं रहती। एक बार कांग्रेसके पिकेटिङ् करनेसे यह मेला बन्द हो गया था। तबसे प्रायः अबतक बन्द ही है।[१]

उन्हीं दिनोंकी बात है, जब कि चलते हुए खवेसे-खवा छिलता था, एक सज्जन कन्धेपर क़ीमती रूमालनुमा शाल डाले हुए मेलेमें ख़िरामाँ-ख़िरामाँ चल रहे थे। रूमालको देखकर एक उचक्केके मुँहमें पानी भर आया। यह हज़रत भी एड़ीसे लेकर चोटी तक ऐन-फ़ैन बने हुए थे। पाँवमें सलेमशाही जूता, पाँच पीके लट्ठेका चूड़ीदार चुस्त पायजामा, शरीरमें चुन्नटदार तनज़ेबका अँगरखा और पट्ठेदार बालोंपर दिल्लीकी बँधी हुई गोलेदार पगड़ी, आँखोंमें सुरमा लगाये, मुँहमें पान खाये, और हाथमें चाँदीकी मूठकी बेत लिये दो क़दममें मुसाफ़िरके पीछे हो लिये, और आहिस्ता-आहिस्ता पीछेसे उसके शालका एक कोना अपने अँगरखे-की तनीमें बाँधकर और ज़रा झटका देकर हाथके इशारेसे मुसाफ़िरके

१. कांग्रेस सरकारने इस मेलेको सन् १९४७के बाद पुनः चालू कराया है।

रूमालनुमा शालको अपने कन्धेपर डालकर बड़ी ही संजीदगीसे बिना किसी हिचकिचाहटके मुसाफ़िरके बराबरमें ही चलते रहे। कन्धेपर-से रूमाल ग़ायब हुआ तो मुसाफ़िर भौंचक रह गया। इधर-उधर देखनेपर रूमालका पता क्या खाक लगता ? बराबरमें चलते हुए उचक्केके कन्धेपर पड़ा हुआ रूमाल देखकर भी कहनेकी हिम्मत नहीं पड़ती थी। ठगकी वेशभूषा और शक्लो-शबाहत ही माशाअल्लाह ऐसी थी कि किसीको शक करनेकी भी जुरअत न हो। शालवालेको एक-दो मिनिट परेशान होते देख, उचक्का खुद ही बोला,

"कहिए हज़रत किस फ़िराक़में हैं आप ?"

मुसाफ़िर बदहवास था, बोला, "दो-सौ पचास रु० का शाल अभी कन्धेपर-से किसीने खींच लिया। बेअदबी मुआफ़ ठीक आप जैसा था।"

उचक्का बड़ी संजीदगीसे बोला, "बेशक ज़रूर होगा। मैं भी अगले साल कुछ कमती-बढ़ती इतनेका ही लाया था। भाई यहाँ तो उचक्कोंके मारे नाकमें दम है। इसी वजहसे हमने तो अपना शाल अँगरखेकी तनीमें बाँध रखा है, जिससे कोई खींच ही न सके।"

शालवाला बेचारा हाथ मलता रह गया।

नवयुग, दिल्ली; १९३३ ई०

चलते-पुर्ज़े

एक हलवाईकी दुकानपर अधिक भीड़ देखकर दो चलते-पुर्ज़ोंने इस नादिर मौक़ेसे लाभ उठाना चाहा। एकने जाकर आठ आनेकी मिठाई ली और बाक़ी आठ आनेके पैसे मांगने लगा। हलवाई कहता था, अभी तुमने मुझे रुपया ही नहीं दिया और वह कहता था, मैंने आते ही रुपया हाथमें दिया है। इसी तरह तू-तू मैं-मैं होने लगी। भीड़ इकट्ठी हो गयी, तब पासमें ही खड़ा हुआ उसका दूसरा साथी बोला, "मियाँ, लाला, इस गड़बड़में मेरा रुपया न भूल जाना। पहले मुझे मिठाई तौल दो, बादमें लड़ा करना।"

एक न शुद दो शुद ! हलवाईने सोचा अगर इसे भी मना करता हूँ तो ये सारे तमाशायी मेरे ही सिर हो जायेंगे और कहेंगे ये सारे झूठ बोलते हैं, सिर्फ़ तू ही एक सच्चा सोंठिया सर्राफ़ बना है। अतः बात न बढ़े इसलिए बोला, "तुम्हारा रुपया खरा, भूल कैसे जाऊँगा ?"

इस तरह झगड़ा करके दोनोंने एक रुपयेकी मिठाई तो ले ही ली।

नवयुग, दिल्ली; १९३२ ई०

धर्म और इतिहास-ग्रन्थोंमें जो पढ़ा

स्वार्थी भावना

अकसर ऋद्धिधारी मुनियोंके आहार लेनेके अवसरपर रत्नोंकी वर्षा होती है। एक बारका जैन-पुराणोंमें उल्लेख है कि एक नगरमें जब ऋद्धि-धारी मुनियोंका आगमन हुआ तो भक्तोंके घर आहार लेते हुए रत्नोंकी वर्षा होने लगी। इस प्रलोभनको एक बुढ़िया संवरण न कर सकी और उसने भी विधिवत् आहार बनाकर मुनि महाराजको नवधा भक्तिपूर्वक पड़गाहा[1]। मुनि महाराजके अँजुली करनेपर बुढ़िया जल्दी-जल्दी गरम खीर उनके हाथपर[2] खानेके लिए डाल, ऊपरको देखने लगी कि अब रत्नोंकी वर्षा हुई, अब रत्नोंकी वर्षा हुई, परन्तु मुनि महाराजका हाथ तो जल गया, किन्तु रत्न न बरसे। मुनि अन्तराय समझकर चले भी गये। मगर बुढ़िया ऊपरको मुँह किये रत्न-वृष्टिका इन्तज़ार ही करती रही। उसकी समझमें यह तनिक भी नहीं आया कि निःस्वार्थ और स्वार्थ-मूलक भाव भी कुछ अर्थ रखते हैं।

अनेकान्त, दिल्ली; फ़रवरी १९३९

---

१. द्वारपर आकर अत्यन्त आदर-सत्कारपूर्वक रसोईमें ले गयी।

२. दिगम्बर जैन-मुनि खड़े होकर अपने हाथमें भोजन लेकर खाते हैं, बरतनमें नहीं।

गर्व

भरत चक्रवर्त्ती छहखण्ड विजय करके वृषभाचल पर्वतपर अपना नाम अंकित करने जब गये, तब उन्हें अभिमान हुआ कि मैं ही एक ऐसा प्रथम चक्रवर्त्ती हूँ, जिसका नाम पर्वतपर सबसे शिरोमणि होगा; किन्तु पर्वतपर पहुँचते ही उनका सारा गर्व खर्व हो गया, जब उन्होंने देखा कि यहाँ तो नाम लिखने तकको स्थान नहीं, न जाने कितने और चक्रवर्त्ती पूर्वकालमें यहाँ नाम लिख गये हैं। तब लाचार होकर उन्हें एक नाम मिटाकर अपना नाम अंकित करना पड़ा।

अनेकान्त, दिल्ली; मार्च १९३९ ई०

विकारी नेत्र

किन्हीं आत्म-ध्यानी मुनिराजके पास एक मोक्ष-लोलुप भक्त बैठा था। उसे अपने धर्म-रत होनेका अभिमान था। गृहस्थ होते हुए भी अपनेमें आत्मसंयमकी पूर्णता समझता था। मुनिराजके दर्शनार्थ कुछ स्त्रियाँ आयीं तो संयमाभिमानी भक्तसे उनकी ओर देखे बिना न रहा गया। पहली बार देखनेपर मुनिराज कुछ न बोले, किन्तु यह देखनेका क्रम जब एक बारसे अधिक जारी रहा तो मुनिराज बोले, "वत्स, प्रायश्चित्त लो!"

"प्रभो! मेरा अपराध?"

"ओह! अपराध करते हुए भी उसे अपराध नहीं समझते, वत्स! एक बार तो अनायास किसीकी ओर दृष्टि जा सकती है, किन्तु बार-बार तो विकारी नेत्र ही उठेंगे, और आत्मामें विकार आना, यही पतनका उद्गम है। आत्मसंयमका अभ्यासी प्रायश्चित्त-द्वारा ही विकारोंपर विजय प्राप्त कर सकता है।"

मोक्ष-लोलुप भक्तको तब अपने संयमकी अपूर्णता प्रतीत हुई।

अनेकान्त, दिल्ली; जून १९३९ ई०

पापीसे घृणा

"प्रभो ! क्या मुझे दीक्षित नहीं किया जायेगा ?"

"नहीं।"

"इसका कारण ?"

"यही कि तुम अज्ञातपुत्र हो।"

"फिर इसका कोई उपाय ?"

"उपाय ? अपने पिताकी स्वीकृति दिलानेपर दीक्षित हो सकोगे।"

"दीक्षित हो सकूँगा—किन्तु पिताकी स्वीकृतिपर ! ओह ! मैंने तो उन्हें आज तक नहीं देखा स्वामिन्, दीनबन्धु, क्या पितृहीनको धर्म-पालक होनेका अधिकार नहीं है ? सुना है, धर्मका द्वार तो सभी शरणागत प्राणियोंके लिए खुला हुआ है।"

"वत्स, तुम्हारा कथन सत्य है, किन्तु तुम अभी सुकुमार हो, इसलिए तुम्हें दीक्षित करनेसे पूर्व उनकी सम्मतिकी आवश्यकता है।"

पन्द्रह वर्षका बालक निरुत्तर हो गया। उसके फूलसे गुलाबी कपोल मुरझा-से गये। सरल नेत्रोंके नीचे निराशाकी एक रेखा-सी खिच गयी, और स्वच्छ उन्नत ललाटपर पसीनेकी बूँदें झलक आयीं। उसका उत्साह भंग हो गया। घर लौटकर वह अपराधीकी तरह दरवाज़ेसे लगकर खड़ा हो गया। उसकी स्नेहमयी माँ पुत्रका मुरझाया हुआ मुख देख प्यारसे सिरपर हाथ फेरती हुई बोली, "क्यों मुन्ने, क्या दीक्षित नहीं हुए ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"वे कहते हैं, पिताकी अनुमति दिलाओ।"

माँने सुना तो कलेजा थामकर रह गयी। उसका पापमय जीवन चलचित्रकी तरह नेत्रोंके सामने आ गया। वह नहीं चाहती थी कि इस

सरलहृदय बालकको पापका नाम भी मालूम होने पाये। इसलिए उसके होश सम्भालनेसे पूर्व ही वह अपना सुधार कर चुकी थी। उसे अपने पुत्र-का भविष्य उज्ज्वल करना था। अतः वह बोली,

"जाओ वेटा, कहना कि मेरे पिताका नाम तो माता भी नहीं जानती, फिर मैं किसकी अनुमति दिलाऊँ ?"

बालक दौड़ा हुआ आचार्य्यके पास गया और एक साँसमें माँका सन्देश कह सुनाया।

आचार्य्य गद्गदकंठसे बोले, "वत्स, परीक्षा हो चुकी। तू सत्य-वादी है इसलिए आ, धर्ममें दीक्षित होनेका अवश्य अधिकारी है।"

कुछ कुल, जाति-गर्वोन्मत्त भक्त आचार्य्यके इस कार्यकी आलोचना करने लगे। भला एक वेश्या-पुत्र और वह धर्ममें दीक्षित किया जाये। असम्भव है, ऐसा कभी न हो सकेगा।

क्षमाशील प्रभु उनके मनोभाव ताड़ गये। बोले, "विचारशील सज्जनो, पापीसे घृणा न करके उसके पापसे घृणा करनी चाहिए। मानव-जीवनमें भूल हो जाना सम्भव है। पापी मनुष्यका प्रायश्चित्त-द्वारा उद्धार हो सकता है, किन्तु जो जान-बूझकर पाप-कर्ममें लिप्त हैं, अपना मायावी रूप बनाकर लोगोंको धोखा देते हैं, एक पापको छिपानेके लिए जो अनेक पाप करते हैं—उनका उद्धार होना कठिन है। जब धर्म पतित-पावन कहलाता है, तब एक वेश्याका भी उसके पालन करनेसे कल्याण क्यों नहीं हो सकता ? फिर यह तो वेश्या-पुत्र है, इसने तो कोई पाप किया भी नहीं। पाप यदि किया भी है तो इसकी माताने किया है। उसका दण्ड इसे क्यों ?"

आचार्य्यकी वाणीमें जादू था, सबने प्रेम-विभोर होकर अज्ञात-पुत्रको गलेसे लगा लिया।

अनेकान्त, दिल्ली; जुलाई १९३९ ई०

साधु-परीक्षा

तीन-सौ वर्ष पूर्व आगरेमें जब कविवर पं० बनारसीदासजी जैन जीवित थे, तब वहाँ एक साधु आये। साधुके क्षमादि गुणोंकी प्रशंसा सुनी तो कविवर भी दर्शनार्थ पधारे, और दीनतापूर्वक साधु महाराजसे बोले, "दया-सिन्धु, क्या मैं आपका शुभ नाम मालूम करनेकी धृष्टता कर सकता हूँ ?"

"मुझे शीतलप्रसाद कहते हैं।"

कविवर नाम सुनकर वहाँ होनेवाली तत्त्वचर्चामें लीन हो गये। फिर थोड़ी देर बाद अपना भुलक्कड़ स्वभाव बताते हुए साधुसे नाम पूछ बैठे। साधुने अन्यमनस्क भावसे नाम दोहरा दिया। कविवरको सन्तोष न हुआ। फिर ज़रा-सी देरके बाद नाम पूछा तो साधु महाराज आगबबूला हो गये और झुँझलाकर बोले, "तू भी अजीब आदमी है। अबे ! दस बार कह दिया, 'हमारा नाम है शीतलप्रसाद ! शीतलप्रसाद ! ! शीतलप्रसाद ! ! !' फिर क्यों दिमाग़ चाटता है ?"

कविवरने साधुका यह कोपकाण्ड देखा तो उठकर चल दिये और जाते हुए बोले, "महाराज, आपका नाम शीतलप्रसाद नहीं, ज्वालाप्रसाद मालूम होता है।"

वीर, दिल्ली; २७ जनवरी १९४० ई०

लक्ष्य

एक काली मिर्च धागेमें बाँधकर पीपलके वृक्षपर लटकाते हुए गुरु द्रोणाचार्य्यने कौरव-पाण्डव सब शिष्योंसे कहा, "तुम्हें अपने बाणोंसे यह मिर्च नीचे गिरानी होगी।"

फिर क्रमशः प्रत्येक शिष्यको उसे बाण-द्वारा नीचे गिरानेकी आज्ञा दी। साथ ही बाण छोड़नेसे पूर्व वे प्रत्येक शिष्यसे पूछते जाते थे, "तुम्हें इस वृक्षपर मिर्चके अतिरिक्त और क्या दिखायी देता है ?"

प्रायः सभी शिष्योंका समान उत्तर था, "वृक्ष, तना, डालियाँ, टहनी, पत्ते, पीपली।" उनमें-से जब कोई भी लक्ष्यको न भेद सका, तब अर्जुनको लक्ष्य भेदनेके लिए आदेश दिया गया और उससे भी पूछा गया, "अर्जुन, तुम्हें काली मिर्चके अतिरिक्त और क्या-क्या दिखायी देता है ?"

अर्जुनका लक्ष्य काली मिर्चकी ओर था, उसी ओर मुँह किये बोला, "गुरुदेव, यहाँ काली मिर्चके सिवा और तो कुछ भी नहीं है, मुझे तो आप भी दिखायी नहीं दे रहे, मुझे स्वयं अपना अस्तित्व मालूम नहीं।"

गुरुदेवके संकेतपर बाण छूटा और वह काली मिर्चको लेकर नीचे आ गिरा। गुरुदेव अर्जुनको शाबाशी देकर अनुत्तीर्ण शिष्योंसे हँसकर बोले,

"अपने लक्ष्यको छोड़कर जो दूसरी ओर दृष्टिपात करता है, वह सफल नहीं होता। मोक्ष-लोलुप संसारको भी देखे तो मोक्ष कैसे पाये ? गुण, गुणी, ज्ञाता, ज्ञान,ज्ञेय और ध्यान, ध्येय, ध्याता, तू और मैं, यह और वहका जब अन्तर्द्वन्द्व आत्मामें मचा हो, तब आत्माके परम लक्ष्य परमात्मा पदकी प्राप्ति कहाँ ? तुम लोग मिर्चको न देखकर टहनी, पत्ते ही देख सके, अतः जो तुम्हारा लक्ष्य था, उसीको भेद सके, यदि अर्जुनकी तरह तुम्हारा लक्ष्य काली मिर्च होता तो तुम भी उसे भेदनेमें सफल होते।"

रूपका मद

स्वर्गमें जब देवराज इन्द्र जी भरकर सनत्कुमार चक्रवर्तीकी सुन्दरता-का बखान कर चुके तो श्रोतृ-मण्डलमें एक फुसफुसाहट-सी फैल गयी।

कुछने कहा, "देवराज आज आवश्यकतासे अधिक अतिशयोक्ति कर गये हैं।"

एकने टीप कसी, "असत्य भाषण भी एक कला है। आजका मुख्य विषय ही यह था।"

कई एकने अपनी सम्मति बनायी, "मालूम होता है सनत् अधिक कुरूप हैं। देवराजने उपहास करनेका यह नवीन ढंग निकाला है।"

और उन सबमें जो एक मनचला था; उसने मनमें सोचा, "क्यों किसीकी नीयतपर आक्रमण किया जाये। चलकर नीर-क्षीर-विवेक ही क्यों न कर लिया जाये।

प्रातःकाल सनत् चक्रवर्ती मल्लशालामें सहस्रों पहलवानोंको ज़ोर करा चुके थे। साँस फूली हुई थी। शरीर पसीनेसे तर-बतर और धूल-धूसरित था। तभी प्रहरीने आकर निवेदन किया,

"एक वृद्ध ब्राह्मण आपके दर्शन करके तीर्थ-यात्राको प्रस्थान करना चाहता है। उससे काफ़ी कहा गया कि महाराज इस समय दर्शन देने योग्य स्थितिमें नहीं हैं, परन्तु उसका आग्रह है कि प्रस्थानका मुहूर्त निकट है, दर्शन किये बिना प्रस्थान होगा नहीं और प्रस्थानका समय टालना भी सम्भव नहीं है।"

दर्शन करनेकी अनुमति मिलनेपर विप्रने देखा तो अपलक देखता ही रहा, "इस रूप-छटाका वर्णन तो देवराज सहस्रांश भी नहीं कर सके। जिसके रोम-रोमपर कामदेव न्यौछावर होता हो, जिसकी आभाके सम्मुख

रति लोट-पोट होती हो, उसकी सुन्दरताका बखान क्या इतना संक्षिप्त किये जाने योग्य था ?"

विप्रको रूप देखनेमें निमग्न देखा तो सनत् बोले, "ब्रह्मदेव, यदि तुम्हें सचमुच देखनेका चाव है तो हमें दरबारमें देखो।"

विप्रने प्रस्थान स्थगित कर दिया, किन्तु रूप देखनेके लोभको संवरण न कर सका।

दरबारमें महाराज आये तो मानो बिजली कौंध गयी। एक तो रूप और उसपर सलीकेसे पहने हुए वस्त्र-आभूषण, फिर इत्रकी महक, पानकी लाली, लोग कलेजा थामकर रह गये।

"विप्र, देखा ?"

"देखा, परन्तु वह बात कहाँ ?"

"क्या ?"

"जी, तनिक पीकदानमें थूककर देखिए।"

थूका तो सहस्रों कीटाणु उसमें बिलबिलाहट कर रहे थे। तनिक-सा रूपमद होनेसे दर्शनका पुनः निमन्त्रण था, उसी मदके उपहारस्वरूप उस नश्वर शरीरमें सैकड़ों रोग आ गये। संसार-वैभवकी क्षणभंगुरताका ध्यान आते ही सनत्ने वैभवको ठुकराकर आत्माके सच्चे रूपको निखारनेके लिए वनोंमें जाकर जैन-दीक्षा ले ली।

१९५० ई०

जीवन्मुक्त

एक सेठ अपने कारोबारमें इतने व्यस्त रहते थे कि भोजन और शयन भी समयपर नहीं कर पाते थे और पत्नी एवं सन्तानसे तो वार्त्तालाप करनेको समय था ही नहीं। उनकी पत्नीने एक रोज़ अवसर पाकर कहा,

"आप तनिक-से कारोबारमें इतने व्यस्त हैं कि तन-मनकी भी सुध नहीं। जब आपका यह हाल है तो भरत चक्रवर्तीका न जाने क्या हाल होगा, जिनके पास छ्यानबे हज़ार रानियाँ और छह खण्डका राज्य है।"

सेठजी बोले, "मैं स्वयं कई बार सोचता हूँ कि वे कैसे इतना बड़ा शासन-कार्य चलाते होंगे और कब-कब वे रानियोंसे वार्त्तालाप करते होंगे ?"

किसी तरह समय निकालकर सेठ साहब दरबारमें गये तो नगर-श्रेष्ठीके नाते भरतने इनसे कुशलक्षेम तथा उपस्थितिका कारण पूछा। कारण जान लेनेपर भरतने कहा, "श्रेष्ठिन्, जब आप आये हैं तो हमारा रनवास भी देख लीजिए। आप कब-कब आते हैं। आपकी जिज्ञासाकी पूर्त्ति भी कर दी जायेगी।"

अन्तःपुरकी महिलासचिवको साथ कर दिया गया और आदेश दे दिया गया कि किसीको भी पहलेसे सूचना देनेकी आवश्यकता नहीं, जो जिस स्थितिमें है उसे उसी प्रकार रहने दिया जाये। नगरश्रेष्ठीसे कोई परदा नहीं है। साथ ही नगरश्रेष्ठीके हाथमें एक तेलका भरा हुआ कटोरा दे दिया गया और कानमें कह दिया, "श्रेष्ठिन्, आप जी भरकर हमारा रनवास देखें, परन्तु कटोरेसे तेलकी एक भी बूँद न गिरे यह ध्यान रखें। एक भी बूँद गिरनेसे प्राण संकटमें पड़ जायेंगे।"

सेठजी जब घूमकर आये तो मालूम हुआ कि उन्होंने कुछ भी न देखकर कटोरेपर ही ध्यान केन्द्रित रखा, क्योंकि बूँद गिर जानेसे प्राणोंकी चिन्ता थी।

भरत चक्रवर्ती सहास्य बोले, "श्रेष्ठिन्, यही स्थिति मेरी है। शरीरसे समस्त सांसारिक कार्य करता हूँ, पर संसारसे भयभीत आत्मा अपने चरम लक्ष्य आत्म-स्वातंत्र्यकी ओर लगी हुई है।"

१९५० ई०

गालियोंका दान

कुछ उद्दण्ड जब बुद्धको काफ़ी गालियाँ दे चुके तो बुद्ध हँसते हुए बोले,

"भद्र, यह तो बताओ, यदि कोई दाता दान करे और भिक्षु न ले तो वह वस्तु किसके पास रहेगी ?"

"दाताके पास।"

"ऐसी बात है तो जो तुम गालियाँ मुझे दे रहे हो, मैं नहीं लेना चाहता।"

१९५० ई०

बुद्धकी करुणा

राजकुमार गौतम उद्यानमें सैर कर रहे थे कि उनके पाँवोंके पास एक पक्षी आकर गिरा। राजकुमारने देखा उसके परोंमें एक तीर चुभा है और वह बड़ी बेचैनीसे छटपटा रहा है। दयार्द्र होकर गौतमने पक्षीको उठाया और वे बड़े यत्नसे रक्तमें भींगे हुए तीरको निकालने लगे। गौतम अभी तीर निकाल भी न पाये थे कि हाथमें धनुष-बाण लिये एक शिकारीने आकर रोष-भरे स्वरमें कहा,

"आपको मेरा शिकार उठानेका क्या अधिकार था?"

राजकुमार गौतम स्नेह-भरे स्वरमें बोले, "जब आपको उसके प्राण तक लेनेका अधिकार है, तब मुझे उसके प्राण बचानेका भी अधिकार न दोगे भाई!"

राजकुमारकी सहृदयतासे पराजित शिकारी धनुष-बाण फेंक उनके चरणोंमें गिर पड़ा।

१९५० ई०

मधुर वचन

पाँचों पाण्डव द्रौपदी-सहित जब वनोंमें निर्वासनके दिन काट रहे थे, असह्य आपत्तियाँ झेलते हुए भी परस्पर प्रेमपूर्वक सन्तोषमय जीवन व्यतीत कर रहे थे, तब एक बार श्रीकृष्ण और उनकी पत्नी सत्यभामा उनसे मिलने गये। बिदा होते समय एकान्त पाकर सत्यभामाने द्रौपदीसे पूछा,

"बहन, पाँचों पाण्डव तुम्हें प्रेम और आदरकी दृष्टिसे देखते हैं, तुम्हारी तनिक-सी भी बातकी अवहेलना करनेकी उनमें सामर्थ्य नहीं है, वह कौन-सा मन्त्र है, जिसके प्रभावसे यह सब तुम्हारे वशीभूत हैं ?"

द्रौपदीने सहज-स्वभाव उत्तर दिया, "बहन, पतिव्रता स्त्रीको तो ऐसी बात सोचनी भी नहीं चाहिए। पति और कुटुम्बीजन सब मधुर वचन तथा सेवासे प्रसन्न होते हैं, मन्त्रादिसे वशीभूत करनेके प्रयत्नमें तो वे और भी परे खिंचते हैं।"

अनेकान्त, दिल्ली; फ़रवरी १९३९ ई०

युधिष्ठिरका पाठ

कौरव और पाण्डव जब बचपनमें पढ़ा करते थे, तब एक रोज़ उन्हें पढ़ाया गया, "सत्य बोलना चाहिए, क्रोध छोड़ना चाहिए।" दूसरे रोज़ सबने पाठ सुना दिया, किन्तु युधिष्ठिर न सुना सके और वह खोये हुए-से चुप-चाप बैठे रहे। उनके मुँहसे उस रोज़ एक शब्द भी नहीं निकला।

गुरुदेव झुँझलाकर बोले, "युधिष्ठिर, तू इतना मन्दबुद्धि क्यों है? क्या तुझे चौबीस घण्टेमें ये दो वाक्य कण्ठस्थ नहीं हो सकते?"

युधिष्ठिरका गला भर आया। वह अत्यन्त दीनतापूर्वक बोले, "गुरुदेव, मैं स्वयं अपनी इस मन्द बुद्धिपर लज्जित हूँ। चौबीस घण्टेमें तो क्या, जीवनके अन्त समय तक इन दोनों वाक्योंको कण्ठस्थ कर सका—जीवनमें उतार सका—तो अपनेको भाग्यवान् समझूँगा। कलका पाठ इतना सरल नहीं था, जिसे मैं इतनी शीघ्र याद कर लेता।"

गुरुदेव तब समझे कि पाठ याद करना जितना सरल है, उसे जीवनमें उतारना उतना सरल नहीं।

अनेकान्त, दिल्ली; फ़रवरी १९२९ ई०

भाईका अपमान

पाण्डवोंका चिरशत्रु दुर्योधन जब गन्धर्वों-द्वारा बन्दी कर लिया गया, तब धर्मराज युधिष्ठिर अत्यन्त व्याकुल हो उठे। उन्होंने भीमसे दुर्योधनको छुड़ा लानेका अनुरोध किया। भीम युधिष्ठिरकी आज्ञाकी अवहेलना करता हुआ बोला,

"मैं और उस पापीको छुड़ा लाऊँ? जिस अधमके कारण आज हम दर-दरके भिखारी और दाने-दानेके मोहताज हैं, जिस पापात्माने द्रौपदीका अपमान किया और जो हमारे जीवनके लिए राहु बना हुआ है, उसी नारकीय कीड़ेके प्रति इतनी मोह-ममता रखते हुए आपको कुछ ग्लानि नहीं होती धर्मराज?"

भीमके रोष-भरे उत्तरसे धर्मराज चुप हो रहे, किन्तु उनकी आन्तरिक वेदना नेत्रोंकी राह मुँहपर अश्रुरूपमें लुढ़क पड़ी। अर्जुनने यह देखा तो लपककर गाण्डीव धनुष उठाया और जाकर शत्रुको युद्धके लिए ललकार-कर, और उसे पराजित करके, दुर्योधनको बन्धनसे मुक्त कर दिया। तब धर्मराज भीमसे हँसकर बोले,

"भैया, हम आपसमें भले ही मतभेद और शत्रुता रखते हैं, कौरव सौ और हम पाण्डव पाँच, बेशक जुदा-जुदा हैं। हम आपसमें लड़ेंगे, मरेंगे, किन्तु किसी दूसरेके मुक़ाबिलेमें हम सौ या पाँच नहीं, अपितु एक-सौ पाँच हैं। संसारकी दृष्टिमें अब भी हम भाई-भाई हैं। हममें-से किसी एकका अपमान हमारे समूचे वंशका अपमान है—यह बात तुम नहीं, अर्जुन जानते हैं।"

युधिष्ठिरके इस स्पष्टीकरणसे भीम मुँह लटकाकर रह गये।

अनेकान्त, दिल्ली; मार्च १९३९ ई०

पापीका अन्न

महाभारत-युद्धमें कौरव-सेनापति भीष्म पितामह जब अर्जुनके बाणोंसे घायल होकर रण-भूमिमें गिर पड़े तो कुरुक्षेत्रमें हाहाकार मच गया। कौरव-पाण्डव पारस्परिक वैर-भाव भूलकर गायकी तरह डकराते हुए उनके समीप पहुँचे। भीष्मपितामहकी मृत्यु यद्यपि पाण्डव-पक्षकी विजय-सूचक थी; फिर भी थे तो वे पितामह न ? धर्मराज युधिष्ठिर बालकोंकी भाँति फुप्पा मारकर रोने लगे। अन्तमें धैर्यपूर्वक रुँधे हुए कण्ठसे बोले,

"पितामह, हम ईर्ष्यालु, दुर्बुद्धि पुत्रोंको, इस अन्त समयमें, जीवनमें उतारा हुआ कुछ ऐसा उपदेश देते जाइए, जिससे हम मनुष्य-जीवनकी सार्थकता प्राप्त कर सकें।"

धर्मराजका वाक्य पूरा होनेपर अभी पितामहके ओठ पूरी तरह हिल भी न पाये थे कि द्रौपदीके मुखपर एक हास्यरेखा देख सभी विचलित हो उठे। कौरवोंने रोष-भरे नेत्रोंसे द्रौपदीको देखा। पाण्डवोंने इस अपमान और ग्लानिको अनुभव करते हुए सोचा,

"हमारे सिरपर उल्कापात हुआ है और द्रौपदीको हास्य सूझा है।"

पितामहको कौरव-पाण्डवोंकी मनोव्यथा और द्रौपदीके हास्यको भाँपनेमें विलम्ब न लगा। वे मधुर स्वरमें बोले,

"बेटी द्रौपदी, तेरे हास्यका मर्म मैं जानता हूँ। तूने सोचा, जब भरे दरबारमें दुर्योधनने साड़ी खींची, तब उपदेश देते न बना, वनोंमें पशु-तुल्य जीवन व्यतीत करनेको मजबूर किया गया, तब सान्त्वनाका एक शब्द भी मुँहसे न निकला, कीचक-द्वारा लात मारे जानेके समाचार

भी साम्यभावसे सुन लिये, रहने योग्य स्थान और क्षुधा-निवृत्तिको भोजन माँगनेपर जब कौरवोंने हमें दुतकार दिया, तब उपदेश याद न आया। सत्य और अधिकारकी रक्षाके लिए पाण्डव युद्ध करनेको विवश हुए तो सहयोग देना तो दूर, उलटा कौरवोंके सेनापति बनकर हमारे रक्तके प्यासे हो उठे, और जब पाण्डवों-द्वारा मार खाकर ज़मीन सूँघ रहे हैं—मृत्युकी घड़ियाँ गिन रहे हैं—तब हमींको उपदेश देनेकी लालसा बलवती हो रही है। बेटी, तेरा यह सोचना सत्य है। तू मुझपर जितना हँसे कम है। परन्तु पुत्री, उस समय मुझमें उपदेश देनेकी क्षमता नहीं थी, पापात्मा कौरवोंका अन्न खाकर मेरी आत्मा मलीन हो गयी थी, दूषित रक्त नाड़ियोंमें बहनेसे बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी, किन्तु वह सब अपवित्र रक्त अर्जुनके बाणोंने निकाल दिया है। अतः आज मुझमें सन्मार्ग बतानेका साहस हो सकता है।"

अनेकान्त, दिल्ली; अप्रैल १९३९ ई०

दृष्टि-भेद

महर्षि व्यासदेवके पुत्र शुकदेव संसारमें रहते हुए भी उससे विरक्त थे। वे आत्म-कल्याणकी भावनासे प्रेरित होकर घरसे जंगलकी ओर चल दिये। तब व्यासदेव भी पुत्रमोहसे वशीभूत, उन्हें समझाकर घर वापस लिवा लानेके लिए पीछे-पीछे चले। मार्गमें दरियाके किनारे कुछ स्त्रियाँ स्नान कर रही थीं। व्यासदेवको देखते ही सबने बड़ी तत्परतासे उचित परिधान लपेट लिये—अंगोपांग ढँक लिये।

महर्षि व्यासदेव बोले, "देवियो, वह अभी मेरा जवान पुत्र शुकदेव तुम्हारे आगेसे निकलकर गया है, उसे देखकर भी तुम नहीं सकुचायीं, ज्योंकी-त्यों स्नान करती रहीं। जो युवा था, सब तरह योग्य था, उससे तो परदा न किया, और मुझ अर्द्धमृतक समान वृद्धसे लजाकर परदा कर लिया, यह भेद कुछ समझमें नहीं आया।"

स्त्रियाँ बोलीं, "शुकदेव युवा होते हुए भी युवकोचित विकारोंसे रहित है। वह स्त्री-पुरुषके अन्तरको और उसके उपयोगको भी नहीं जानता, उसकी दृष्टिमें सारा विश्व एक रूप है। सांसारिक भोगोपभोगोंसे बालकके समान अबोध है, परन्तु देव, आपकी वैसी स्थिति नहीं है। इसलिए आपकी दृष्टिसे छिपनेके लिए परिधान लपेट लिये हैं।"

अनेकान्त, दिल्ली; मई १९३९ ई०

भ्रातृ-प्रेम

वनोंमें भटकते हुए पाण्डवोंको प्यास लगी तो सहदेव पानी लेने तालाब-पर गये । चारों भाइयोंकी जीभ सूखकर तालुसे लग गयी, मगर सहदेव न आये । तब नकुल, भीम, अर्जुन भी एकके-बाद-एक गये, मगर कोई भी वापस न आया । पानी लाना तो दरकिनार, खाली हाथ भी कोई न लौटा । तब लाचार स्वयं उनकी टोहमें धर्मराज युधिष्ठिर पधारे । पानी न मिलनेसे जो एक झुंझलाहट मनमें हो रही थी, वहाँ अब चिन्ताने डेरा जमाया । प्यासकी बेचैनीका स्थान बरबस आशंकाने ले लिया ।

तालाबपर जाकर देखा तो चारों भाई बेहोश पड़े हुए थे । सोचा, प्यासके कारण ही ऐसा हुआ है । अतः उनके मुँहमें पानी डालनेके लिए युधिष्ठिरने ज्यों ही तालाबसे पानी लेना चाहा कि एक गूँजती हुई आवाज़-से चौंककर देखा तो सामने एक विशाल दैत्याकार छाया दीख पड़ी ।

छाया-द्वारा बतलाया गया कि "तालाबपर उसीका अधिकार है । और इस तालाबका पानी वही पीनेका अधिकारी हो सकता है, जो उसके इन प्रश्नोंका उत्तर दे सके ।" वे प्रश्नोत्तर निम्नप्रकार हुए,

प्र० : उत्तम धर्म कौन-सा है ?
उ० : जो दुःखसे छुटकारा दिलाये ।
प्र० : अनुकरणीय मार्ग कौन-सा है ?
उ० : महापुरुष जिस मार्गसे गये हैं ।
प्र० : आश्चर्य क्या है ?
उ० : मृत्युका न आना ।
प्र० : सुख क्या है ?
उ० : निराकुलता ।

युधिष्ठिरके उत्तर पसन्द आनेपर 'पानी पीनेको आज्ञा भी प्रदान हो गयी; साथ ही पुरस्कार-स्वरूप चारों भाइयोंमें-से एकका जीवन माँगनेकी अनुमति भी।

धर्मराजने सहज स्वभाव बतलाया कि माँगना उन्हें कभी आया नहीं, फिर भी बन्धु-प्रेमसे लाचार नकुल या सहदेवके जीवन-दानके वे अभिलाषी हैं।

मनुष्याकार छाया ठहाका मारकर हँसती हुई प्यारपूर्वक बोली, "धर्मराज, तुम्हारी मूर्खताके अनेक उदाहरण सुने थे, पर प्रत्यक्ष अनुभव आज ही हुआ। यह निश्चित है कि अन्यायके प्रतिकारके लिए तुम्हें कौरवोंसे युद्ध करना होगा, और उस युद्धमें विजयकी आशा भीम और अर्जुनके सहयोगपर ही अवलम्बित है। फिर भी उनका जीवन न चाहकर सहदेव या नकुलका जीवन चाहते हो, जो रण-कौशलसे सर्वथा अनभिज्ञ हैं। मालूम होता है आपत्तियोंकी चट्टानोंसे टकरा-टकराकर तुम्हारी विचारशक्ति भी नष्ट-भ्रष्ट हो गयी है।"

धर्मराज बन्धुओंपर आयी हुई इस आपत्तिसे अत्यन्त व्याकुल थे। मनमें मानापमानका ध्यान लाये बिना ही बोले,

"मेरे सम्बन्धमें आप जो भी उचित समझें, सम्मति बनायें। मगर मेरी इस अभिलाषामें मेरा स्वार्थ केवल इतना ही है कि नकुल-सहदेवकी जननी मेरी अत्यन्त स्नेहमयी माँ माद्री स्वर्गासीन हो चुकी हैं और अपनी जननी कुन्तीका पुत्र मैं जीवित हूँ ही। यदि इनमें-से किसी एकको जीवित न कराकर भीम या अर्जुनको जीवित कराता हूँ तो वे सम्भव है यह सोचकर व्यथित हों कि संसारमें कुन्तीके दो पुत्र हैं, परन्तु मेरा एक भी नहीं। युधिष्ठिरने अपने सहोदर बन्धुका ही जीवन चाहा, सौतेलेका नहीं। शायद मेरी पक्षपातकी भावना उन्हें तो ठेस न पहुँचाये, क्योंकि वे तो संसारकी मोह-मायासे दूर हैं, परन्तु संसारमें एक भ्रामक उदाहरण प्रस्फुटित हो जायेगा। इसी बातको लेकर मेरी यह भावना हुई है। आप इसे मेरी

मूर्खता भी समझें तो मुझे कोई पछतावा नहीं होगा।"

चारों भाई अँगड़ाई लेते हुए उठ बैठे। हवा जो कौतूहलवश तमाशा देखने खड़ी हो गयी थी, वह यह कहती हुई कि, "दुनिया मूर्ख नहीं है जो युधिष्ठिरको धर्मराज कहती है"—संसारके कोने-कोनेमें भ्रातृ-प्रेमका यह समाचार सुनाने दौड़ गयी।

१९५० ई०

अकबरकी विशालहृदयता

पानीपतकी दूसरी लड़ाईमें हेमू युद्ध करता हुआ अकबर बादशाहके सेनापति-द्वारा बन्दी कर लिया गया। बन्दी अवस्थामें वह अकबरके समक्ष लाया गया। उस समय अकबरकी आयु केवल १३ वर्षकी थी। पुरातन प्रथाके अनुसार अकबरको हेमूका वध करनेके लिए कहा गया, किन्तु यह कहकर कि,

"निःसहाय और बन्दी मनुष्यपर हाथ उठाना पाप है।"

प्राण लेनेसे इनकार कर दिया। बालक अकबरकी इस दूरदर्शिता और विशालहृदयताकी उपस्थित जन-समूहने मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की। अकबर अपने ऐसे ही लोकोत्तर गुणोंके कारण इस छोटी-सी आयुमें काँटोंका ताज पहनकर विशाल साम्राज्य स्थापित कर सका था।

अनेकान्त, दिल्ली; अप्रैल १९२९ ई०

विरोधीके प्रति व्यवहार

हज़रत मुहम्मद—जबतक अरबवालोंने उन्हें नबी स्वीकृत नहीं किया था, तबकी बात है—घरसे रोज़ाना नमाज़ पढ़ने मस्जिदमें तशरीफ़ ले जाते तो रास्तेमें एक बुढ़िया उनके ऊपर कूड़ा डालकर उन्हें रोज़ाना तंग करती। हज़रत कुछ न कहते, चुपचाप मन-ही-मनमें ईश्वरसे उसे सुबुद्धि देनेकी प्रार्थना करते हुए नमाज़ पढ़ने चले जाते। हस्बदस्तूर मुहम्मद साहब एक रोज़ उधरसे गुज़रे तो बुढ़ियाने कूड़ा न डाला। हज़-रतके मनमें कौतूहल हुआ—आज क्या बात है जो बुढ़ियाने अपना कर्त्तव्य पालन नहीं किया। दरवाज़ा खुलवानेपर मालूम हुआ कि बुढ़िया बीमार है। हज़रत अपना सब काम छोड़ उसकी तीमारदारी (परिचर्या) में लग गये। बुढ़िया हज़रतको देखते ही काँप गयी, उसने समझा कि आज उसे अपनी उद्दण्डताओंका फल अवश्य मिलेगा, किन्तु बदला लेनेके बजाय उन्हें अपनी सेवा करते देख, उसका हृदय उमड़ आया और उसने मुहम्मद साहबपर ईमान लाकर इस्लामधर्म ग्रहण कर लिया।

हज़रतके जीवनमें कितनी ही ऐसी झाँकियाँ हैं, जिनसे विदित होता है कि सुधारकोंके पथमें अनेक बाधाएँ उपस्थित होती हैं और उन सबको पार करनेके लिए—विरोधियोंको अपना मित्र बनानेके लिए—उन्हें कितने धैर्य और प्रेममय जीवनकी आवश्यकता पड़ती है। विरोधीको नीचा दिखाने, बदला लेने आदिकी हिंसक भावनाओंसे अपना नहीं बनाया जा सकता। कुमार्गरत, भूला-भटका, प्रेम-व्यवहारसे ही सन्मार्गपर आ सकता है।

अनेकान्त, दिल्ली; फ़रवरी १९३९ ई०

स्वावलम्बी बादशाह

गुलाम-वंशीय नासिरुद्दीन बादशाह अत्यन्त सच्चरित्र और धर्मनिष्ठ था। आजीवन उसने राज-कोषसे एक भी पैसा न लेकर अपनी हस्तलिखित पुस्तकोंसे जीवन-निर्वाह किया। भारतवर्षका इतना बड़ा बादशाह होनेपर भी, अन्य मुसलमान शासकोंके रिवाजके विपरीत, उसके एक ही पत्नी थी। घरेलू कार्योंके अलावा रसोई भी स्वयं बेगमको बनानी पड़ती थी। एक बार रसोई बनाते समय बेगमका हाथ जल गया तो उसने बादशाहसे कुछ दिनके लिए रसोई बनानेके लिए नौकरानी रख देनेकी प्रार्थना की। मगर बादशाहने यह कहकर बेगमकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी कि,

"राज-कोषपर मेरा कोई अधिकार नहीं है, वह तो प्रजाकी ओरसे मेरे पास धरोहर मात्र है, और धरोहरमें-से अपने कार्योंमें व्यय करना अमानतमें खयानत है। बादशाह तो क्या, प्रत्येक व्यक्तिको स्वावलम्बी होना चाहिए। अपने कुटुम्बके भरण-पोषणके लिए स्वयं कमाना चाहिए। जो बादशाह स्वावलम्बी न होगा, उसकी प्रजा भी अकर्मण्य हो जायेगी, अतः मैं राज-कोषसे एक पैसा भी नहीं ले सकता और मेरे हाथकी कमायी सीमित है। उससे तुम्हीं बताओ, नौकरानी कैसे रखी जा सकती है ?"

अनेकान्त, दिल्ली; मार्च १९२९ ई०

ख़लीफ़ा उमर

हज़रत उमर (द्वितीय खलीफ़ा) बहुत सादगी-पसन्द थे। उन्होंने अपने बाहु-बलसे अरब, फ़िलस्तीन, रूम, बेतुल मुक़द्दस (शामका एक स्थान) आदिमें केवल दस वर्षमें ही छत्तीस-हज़ार क़िले और शहर फ़तह किये। यह विजयी खलीफ़ा सादगीके नमूने थे। राज-कोषसे केवल अपने परिवार पालनके लिए बीस रुपया माहवार लेते थे। तंगदस्ती इतनी रहती थी कि कोहनीके कपड़ोंपर आपको चमड़ेके पेबन्द लगाना पड़ता था, ताकि उस स्थानसे दोबारा न फट जायें। जूते भी स्वयं गाँठ लेते थे। सिरहाने तकियेकी एवज़ ईंटें लगाते थे। उनके बच्चे भी फटे-हाल रहते थे। इस-लिए हमजोली बालक अपने नये कपड़े दिखाकर उन्हें चिढ़ाते थे। एक दिन आपके पुत्र अब्दुलरहमानने अपने लिए नये कपड़े बनवानेके लिए रो-रोकर खलीफ़ासे बहुत मिन्नतें कीं। खलीफ़ाका हृदय पसीजा और उन्होंने अगले वेतनमें काट लेनेके लिए संकेत करते हुए दो रुपये पेशगी देनेको लिखा; किन्तु कोषाध्यक्ष खलीफ़ाका पक्का शिष्य था, अतः उसने यह लिखकर दो रुपये पेशगी देनेसे इनकार कर दिया कि, "काश ! इस बीचमें आप इन्तक़ाल फ़रमा गये—स्वर्गस्थ हो गये—तो यह पेशगी लिये हुए रुपये किस खातेमें डाले जायेंगे ? मौतका कोई भरोसा नहीं, उसे आनेमें देर नहीं लगती और फिर आपका तो युद्धमय जीवन मृत्युसे खिलवाड़ करनेको सदैव प्रस्तुत रहता है। मैं नहीं चाहता कि आप क़र्ज़-दार होकर जायें।"

हज़रत उमर इस परचेको पढ़कर रो पड़े और कोषाध्यक्षकी इस दूरन्देशीकी बार-बार सराहना की। प्यारे पुत्रको अगले माहमें कपड़े बनवा देनेका आश्वासन देते हुए गलेसे लगाया। इन्हीं खलीफ़ा साहबने

अपने इस प्यारे पुत्रको एक अनाथ लड़कीसे बलात्कार करनेपर बेंतें लगवायीं, जिससे पुत्रकी मृत्यु हो गयी थी।

इतनी बड़ी सल्तनतका प्रबन्ध करते हुए और युद्धोंमें व्यस्त रहते हुए भी खलीफ़ा उमर अपनी कमरपर मश्क लादकर अनेक असहाय विधवाओं-के घरोंमें रोज़ाना पानी भर आनेके लिए भी समय निकाल लेते थे।

अनेकान्त, दिल्ली; अप्रैल १९३९ ई०

दयालु अयूब

हज़रत अयूब मुसलमानोंके एक बहुत माने हुए वली हुए हैं। वे बड़े दयालु थे। उनके सीनेमें ज़ख्म हो गये थे और उनमें कीड़े पड़ गये थे। एक रोज़ आप मदीनेमें एक स्थानपर खड़े हुए थे कि चन्द कीड़े ज़ख्मसे निकलकर ज़मीनपर गिर पड़े। तब आपने उन कीड़ोंको ज़मीनसे उठाकर दुबारा अपने ज़ख्ममें रख लिया। लोगोंके पूछनेपर हज़रतने फ़रमाया, "क़ुदरतने इन कीड़ोंकी खुराक यहीं दी है, अलहदा होनेपर मर जायेंगे। जब हम किसीमें जान नहीं डाल सकते, तब हमें उनकी जान लेनेका क्या हक़ है ?"

अनेकान्त, दिल्ली; मार्च १९३९ ई०

दारुण क्लेशमें महत्ता

धर्मान्ध और पितृ-द्रोही औरंगज़ेब अपने पूज्य पिता शाहजहाँको क़ैदमें डालकर बादशाह बन बैठा, तो उसने अपना मार्ग निष्कण्टक करनेके लिए शुजा और मुराद नामक अपने दो सगे भाइयोंको भी लगे हाथों यमलोक पहुँचा दिया। सल्तनतके असली उत्तराधिकारी बड़े भाई दाराको भी गिरफ़्तार करके एक भद्दी और बूढ़ी हथिनीकी नंगी पीठपर बिठाकर देहलीके मुख्य-मुख्य बाज़ारोंमें-से उसको घुमाया गया। कहनेको जुलूस था, पर पैशाचिक ताण्डव था। जिन बाज़ारोंमें दारा युवराज और स्थानापन्न सम्राट्की हैसियतसे कभी निकलता था, वहीं वह पराजित और बन्दीके रूपमें अपनी प्रजाके सामने इस ज़िल्लतसे घुमाया जा रहा था कि ज़मीन फट जाती तो उसमें समा जाना वह अपना गौरव समझता।

दोपहरकी कड़ी धूप, हथिनीकी नंगी पीठ, क़ैदीका वेश, और फ़िर प्रजाके भारी समूहसे गुज़रना, दाराको सहस्र बिच्छुओंके डंकसे भी अधिक पीड़ा दे रहा था। वह रास्ते-भर नीची नज़र किये बैठा रहा, भूलकर भी पलक ऊपर न किये। एकाएक ज़ोरकी आवाज़ आयी,

"दारा, जब भी तू निकलता था, खैरात करता हुआ जाता था, आज तुझे क्या हो गया है? क्या तेरी उस सखावतसे हम महरूम रहेंगे?"

दाराने नेत्र उठाकर एक पागल फ़क़ीरको उक्त शब्द कहते हुए देखा। चट कन्धेपर पड़ा हुआ दुपट्टा उसकी ओर फेंक दिया और फिर नीची नज़र कर ली।

फ़क़ीर 'दारा ज़िन्दाबाद!' के नारे लगाता हुआ नाचने लगा। प्रजा दाराके इस साधुवादपर आँसू बहाने लगी। उसने उस आपत्तिके समय भी अपने दयालु और दानी स्वभावका परिचय दिया।

अनेकान्त, दिल्ली; मई १९३९ ई०

नादिरशाहका एक गुण

नादिरशाह एक साधन-हीन दरिद्र परिवारमें जन्म लेनेपर भी महान् विजेता हुआ है । वह आपत्तियोंकी गोदमें पलकर दुःख-दारिद्र्यके हिण्डोलोंमें झूलकर एक ऐसा विजेता हुआ है कि विजय उसके घोड़ोंके टापकी धूलके साथ-साथ चलती थी । यद्यपि वह स्वभावसे ही क्रूर, रक्तलोलुप मनुष्य था, फिर भी स्वावलम्बन उसमें एक ऐसा गुण था, जिसने उसे महान् सेनापतियोंकी पंक्तिमें बैठने योग्य बना दिया था । वह आत्मविश्वासी था, वह दूसरोंका मुँह-देखा न होकर अपने बाहुओंपर भरोसा रखता था । उसने दूसरोंकी सहायतापर अपनी उन्नतिका ध्येय कभी नहीं बनाया, और न अपने जीवनकी बागडोर किसीको सौंपी । जिस कार्यको वह स्वयं करनेमें अपनेको असमर्थ पाता, उसको उसने कभी हाथ तक न लगाया ।

देहली-विजय करनेपर विजित बादशाह मुहम्मदशाह रँगीलेने उसे हाथीपर सवार कराके देहलीकी सैर करानी चाही । नादिरशाह इससे पहले कभी हाथीपर न बैठा था, उसने भारतमें ही आनेपर हाथी देखा था । हाथीके हौदेमें बैठनेपर नादिरशाहने आगेकी ओर झुककर देखा तो हाथीकी गरदनपर महावत अंकुश लिये बैठा था ।

नादिरशाहने महावतसे कहा, "तू यहाँ क्यों बैठा है ? हाथीकी लगाम मुझे देकर तू नीचे उतर जा ।"

महावतने गिड़गिड़ाते हुए अर्ज किया, "हुज़ूर, हाथीके लगाम नहीं होती । बेअदबी मुआफ़, इसको हम फ़ीलवान ही चला सकते हैं ।"

"जिसकी लगाम मेरे हाथमें नहीं, मैं उसपर नहीं बैठ सकता । मैं

अपना जीवन दूसरोंके हाथोंमें देकर खतरा मोल नहीं ले सकता।" यह कहकर नादिरशाह हाथीसे कूद पड़ा! जो दूसरोंके कन्धेपर बन्दूक़ रखकर चलानेके आदी हैं या जो दूसरोंके हाथकी कठपुतली बने रहते हैं, नादिरशाह उनमें-से नहीं था। यही उसके जीवनका एक सबसे बड़ा गुण था।

अनेकान्त, दिल्ली; जून १९३९ ई०

शूर-वीर दारा

दारा मुसलमान होते हुए भी सर्वधर्म-समभावी था। उसके हृदयमें अन्य धर्मोंके प्रति भी सम्मान था। वह जितना ही दयालु और स्नेहशील था, उतना ही वीर प्रकृतिका भी था। शत्रुके हाथों भेड़ोंकी तरह मरना उसे पसन्द नहीं था। वह औरंगज़ेब-द्वारा बन्दी बनाये जानेपर कमरेमें बैठा हुआ चाक़ूसे सेब छील रहा था कि औरंगजेबकी ओरसे उसका वध करनेके लिए घातक आये। घातकोंको आते देख उसने प्राणभिक्षाके लिए गिड़गिड़ाना पाप समझा और चुपचाप आत्म-समर्पण करना कायरता जानी। तलवार न होनेपर भी सेब छीलनेवाले चाक़ूसे ही आत्म-रक्षाके लिए तैयार हो गया और अन्तमें आक्रमणको रोकनेका प्रयत्न करता हुआ, जवाँमर्दोंकी तरह मरकर वीरगतिको प्राप्त हुआ।

अनेकान्त, दिल्ली; मई १९३९ ई०

हृदयकी स्वच्छता

शैख इब्राहीम 'ज़ौक़' उर्दूके एक बहुत प्रसिद्ध शाइर हुए हैं। वे मुग़ल-वंशके अन्तिम बादशाह बहादुरशाह 'ज़फ़र' के कविता-गुरु थे। आज भी भारतवर्षमें हज़ारों उर्दूके प्रसिद्ध कवि उनके शिष्य और प्रशिष्य हैं। उर्दू-शाइरीमें महाकवि 'ज़ौक़' अपना नाम अमर कर गये हैं। आप मुसलमान थे। एक बार अपने शागिर्दोंके साथ बैठे हुए आप बातचीत कर रहे थे कि उनके सिरपर चिड़िया बार-बार आकर बैठने लगी। आपने तंग आकर हँसीमें फ़रमाया,

"नादानोंने मेरी पगड़ीको घोंसला समझ लिया है।"

उस्तादकी इस बातसे सब खिलखिलाकर हँस पड़े। वहीं एक नाबीना (नेत्रहीन) शिष्य भी बैठा हुआ था। उसे जब हँसीका कारण मालूम हुआ तो बोला, "उस्ताद, हमारे सिरपर तो चिड़िया एक बार भी आकर नहीं बैठी।"

शागिर्दकी बात सुनते ही शैख 'ज़ौक़' बोले, "क्या वे जानती नहीं हैं कि तू क़ाज़ी है, कलमा पढ़कर चट हलाल कर देगा।"

उस्तादकी बात सुनी तो हँसीका फ़व्वारा छूट पड़ा। नाबीना शागिर्द भी झेंपता हुआ हँस दिया।

शागिर्दोंने अर्ज़ किया, "उस्तादने क्या ख़ूब फ़रमाया है। बेशक दिलसे दिलको राहत होती है। अपने दोस्त-दुश्मनकी पहचान जानवरोंको भी होती है। साँप बच्चेके छेड़नेपर भी उसके साथ खेलता रहता है, मगर जवान इनसानको ज़रा-सी भूलपर भी काट खाता है। बुग्ज़ो-हसदसे पाक

(राग-द्वेषरहित) फ़क़ीरोंके पास शेर और हिरन चौकड़ियाँ भरते हैं, उनके तलवे प्रेमसे चाटते हैं, मगर शिकारीको छिपे हुए देखकर भी भाग जाते हैं या मुक़ाबिलेको तैयार हो जाते हैं। गाय क़साईके हाथ बेचे जानेपर डकराती है। मगर किसी रहमदिलके छुड़ा लेनेपर एहसान-भरी नज़रोंसे देखती है। इनसानका चेहरा मानिन्द आइने (दर्पण) के है। उसमें खरे-खोटेका अक्स (प्रतिबिम्ब) हर वक़्त झलकता रहता है।''

अनेकान्त, दिल्ली; अगस्त १९३९ ई०

दयालु वज़ीर

नादिरशाह क़त्ले-आमका हुक्म देकर देहली—चाँदनी चौककी सुनेहरी मस्जिदमें तलवार बग़लमें रखकर क़ुरानकी तलावत (पाठ) करने बैठ गया। क़त्लेआमसे दिल्ली-भरमें हा-हाकार मच गया। सड़कें लाशोंसे पट गयीं। पानीकी नालियाँ लाल हो गयीं, चप्पे-चप्पेपर इनसान सिसकते नज़र आने लगे। यह राक्षसी कृत्य एक वज़ीरसे न देखा गया। वह काँपते-काँपते सुनेहरी मस्जिदमें गया। मगर ज़ालिम ख़ूँख्वार और ज़िद्दी नादिरशाहसे क़त्लेआमका हुक्म वापस लेनेकी प्रार्थना करना अपनी जानसे भी हाथ धो बैठना था। आखिर दयालु वज़ीरको एक युक्ति सूझ पड़ी। उसने अमीर खुसरोका यह शेर बादशाहसे अर्ज़ किया :

कसे न मान्द कि दीगर बतेग़े नाज़ कुशी।
मगर कि ज़िन्दा कुनी खल्क़रा व बाज़ कुशी॥

''कोई आदमी नहीं बचा। सब तुम्हारी क़हरकी निगाहके शिकार हो गये। निगाहे-नाजकी तलवारसे सबको मार डाला। अब निगाहके लुत्फ़से लोगोंको ज़िन्दा करो तो उन्हें फिर मारा जाये।'' बादशाह इस शेरको सुनकर बहुत व्याकुल हुआ और उसने तत्काल क़त्ले-आमका हुक्म वापस ले लिया।

१९५० ई०

दहेजमें पाँच-सौ उजाड़ गाँव

बादशाह महमूद ग़ज़नवी और उसका वज़ीर किसी जंगलसे गुज़र रहे थे कि एक वृक्षपर दो उल्लुओंको एक-दूसरेकी ओर मुँह किये हुए बैठे देखा। वजीरको छेड़नेको नीयतसे बादशाह बोला,

"वज़ीर, सुना है आप उल्लुओंकी बोली समझ लेते हैं ?"

बादशाहके मज़ाक़का आशय था कि जानवरोंकी बोली जानवर ही समझते हैं, परन्तु वज़ीर भी अत्यन्त चतुर और हाज़िर-जवाब था। उसने दस्तबस्ता अर्ज़ की, "क़िबलए-आलम, ख़ुदाकी इनायतसे समझ तो लेता हूँ, मगर इस वक़्त जो ये नाहन्ज़ार गुफ़्तगू कर रहे हैं, उस तरफ़ तवज्जह न फ़रमायी जाये तो बेहतर है।" वज़ीरकी संजीदगी और लबोलहजेसे बादशाह-को यक़ीन हो गया कि वह जानवरोंकी बोली समझ लेता है और वह यह भूल गया कि उसने छेड़नेकी नीयतसे जुमला कसा था। बादशाहने गुफ़्तगूका सारांश बतानेके लिए जब बहुत ज़्यादा इसरार किया तो वज़ीर बोला,

"ख़ुदावन्दा, जानकी अमान मिले तो गुफ़्तगूका निचोड़ बतानेकी गुस्ताख़ी करूँ।"

"जान बख़्शी गयी।"

"जहाँपनाह, इसमें एक लड़कीवाला और दूसरा लड़केवाला है। लड़कीवालेने अपनी दोशीज़ाकी शादी उसके लड़केसे करनेकी ख़्वाहिश ज़ाहिर की तो उसने दहेजमें पाँच-सौ उजाड़ गाँव तलब किये।...."

"अच्छा फिर, कहे जाओ, डरो मत।"

"ग़रीबपरवर, बेअदब लड़कीवालेने जवाब दिया, "जानते नहीं आजकल किसका राज है ? उजाड़ गाँवोंकी अब क्या कमी ? आप रिश्ता

तो मन्ज़ूर करें। पाँच-सौ गाँव नहीं, मैं एक हज़ार उजाड़ गाँव दहेजमें दूँगा।"

वज़ीर कहनेको तो कह गया, परन्तु वह इस तरह काँपने लगा, जैसे उसकी रूह फ़ना हुई जा रही है। बादशाह वज़ीरके व्यंग्यको समझ गया, वह आत्मग्लानि समेटते हुए बोला,

"वज़ीर, डरो नहीं, तुम्हारे-जैसे ही वज़ीरोंकी हमें ज़रूरत है। हम हरगिज़ इन उल्लुओंकी मुराद पूरी न होने देंगे। अब ज़िन्दगीका हर-लमहा गाँवोंको उजाड़नेमें नहीं, उन्हें आबाद करनेमें सर्फ़ होगा। काश मेरी आँखें पहले ही खुल गयी होतीं।"

जून १९५० ई०

गधेकी लात

मिर्ज़ा ग़ालिब उर्दूके अमर शाइर हुए हैं। उनके विरोधियोंने कुछ असभ्यतापूर्ण पत्र भेजे तो वे पढ़कर चुप हो गये। शिष्योंने जवाब देनेके लिए आग्रह किया तो फ़रमाया, "अगर कोई गधा तुम्हें लात मारे तो तुम भी उसे क्या लात मारोगे?"

जून १९५० ई०

पुरुषार्थ

एक बार हज़रत मुहम्मदसे एक व्यक्तिने अपनी निर्धनताका उल्लेख करते हुए आर्थिक सहायताकी याचना की। हज़रत थोड़ी देर तो चुप रहे, फिर सोचकर फ़रमाया, "तुम्हारे पास क्या-क्या चीज़ मौजूद हैं?"

निर्धन : "मेरे पास एक बोरिया है, जिसके आधे हिस्सेको ओढ़ता हूँ और आधेको बिछाता हूँ, और एक प्याला है, जिससे पानी पीता हूँ।

हज़रत : "जाओ, वह प्याला और बोरिया ले आओ।"

जब वह ग़रीब बोरिया और प्याला ले आया तो आपने उसे दो दिरममें नीलाम कर दिया और वे दोनों दिरम उसे देते हुए आदेश दिया,

"एक दिरमका अन्न घरमें डालो और दूसरेकी कुल्हाड़ी ख़रीदकर मेरे पास लाओ।"

जब वह कुल्हाड़ी खरीदकर आया तो फ़रमाया, "जाओ लकड़ियाँ काट-काटकर बेचो और पन्द्रह रोज़ तक मेरे पास न आओ।"

पन्द्रह रोज़के बाद वह ग़रीब आया तो कमाये हुए दस दिरम हज़रतके चरणोंमें डालकर बड़े अदबसे एक तरफ़ खड़ा हो गया। हज़रतका मुँह प्रसन्नतासे खिल उठा और उसे दस दिरम लौटाते हुए इसी तरह पुरुषार्थ-पूर्वक जीवन व्यतीत करते रहनेको प्रोत्साहन दिया।

फ़रवरी १९५१ ई०

जिहाद और रोज़गार

इस्लाममें जिहाद (धर्मके लिए विधर्मियोंसे युद्ध)को बहुत महत्त्व दिया गया है। उसके लिए तैयार रहना हर मुसलमानका प्रथम कर्तव्य बतलाया गया है, किन्तु रोजगारको जिहादपर भी तरजीह दी गयी है; क्योंकि भूखा रहकर मनुष्य कोई काम नहीं कर सकता।

एक बार हज़रत उमर मस्जिदमें तशरीफ़ लाये तो देखा एक आदमी जनताको जिहादके लिए उभार रहा है। हजरत उसकी स्थितिसे भाँप गये कि यह आर्थिक संकटसे तंग आकर जिहादके लिए मजबूर हुआ है। क्योंकि अर्थाभाव भी बहुत-से विद्रोह और अनैतिक कार्योंका जनक होता है। यदि देशमें अर्थसंकट दूर न किया जाये, और भूखकी ज्वालाको यूँ ही सुलगते रहने दिया जाये तो, यह समूचे देशको भस्मसात् कर देती है।

अतः हज़रतने उसका हाथ पकड़कर जनतासे कहा, "आपमें-से क्या कोई आदमी इसे नौकरी दे सकता है?"

एक व्यक्तिके स्वीकृति देनेपर आपने उसे उसके हवाले कर दिया।

थोड़े दिनके बाद हज़रतने उसे बुलवाया तो मालूम हुआ कि उसकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी हो गयी है। तब आपने फ़रमाया,

"अब तुम चाहे जिहाद करो, या इनसानी फ़राइज़ अदा करो, या अपने बच्चोंकी परवरिश करो, खुदमुख़्तार हो।"

जिहादका नारा लगानेवालेने जिहादके एवज़ बारोज़गार रहना ही पसन्द किया।

आजीविका और परिश्रमपर इस्लाममें बहुत ज़ोर दिया गया है। एक हदीसका अनुवाद इस प्रकार है,

"अगर क़यामत क़ायम हो जाये, उस हालमें कि तुम ज़मीनमें खजूर-का पौदा नस्ब करने (लगाने)के लिए झुके हुए हो, तो उस वक़्त तक खड़े न हो, जबतक वह पौदा नस्ब न कर लो।"

फ़रवरी १९५१ ई०

अपने दोष देखो

महात्मा ईसा बैठे हुए दीन-दुखी और पतित प्राणियोंके उत्थानका उपाय सोच रहे थे कि उनके कुछ अनुयायी एक स्त्रीको पकड़े हुए आये और बोले,

"प्रभो, इसने व्यभिचार-जैसा निन्द्य कर्म किया है। इसलिए पत्थर मार-मारकर इसके प्राण लेने चाहिए।"

महात्मा ईसाने अपने अनुयायियोंका यह निर्णय सुना तो उनका दयालु हृदय भर आया, रुँधे कण्ठसे बोले, "आपमें-से जिसने यह निन्द्य कर्म मन, वचन, कायसे न किया हो, वही इसको पत्थर मारे।"

महात्मा ईसाका आदेश सुना तो मानो शरीरको लकवा मार गया। नेत्र ज़मीनमें गड़के-गड़े रह गये। उनमें एक भी ऐसा नहीं था, जिसके पर-स्त्रीके प्रति कुविचार कभी उत्पन्न न हुए हों। सारे अनुयायी उस स्त्रीको पकड़े हुए मुँह लटकाये खड़े रहे। तब महात्मा ईसाने करुणा-भरे स्वरमें कहा,

"मुमुक्षुओ, पतितों, दुराचारियों और कुमार्गरतोंको प्रेमपूर्वक उनकी भूल सुझाओ, वे तुम्हारे दयाके पात्र हैं। औरोंके दोष देखनेसे पूर्व अपनी तरफ़ भी देख लेना चाहिए।"

अनेकान्त, दिल्ली; जुलाई १९३९ ई०

इच्छा-शक्ति

वास्तवमें बचपनके ही संस्कार भविष्यमें भाग्य-निर्माता होते हैं। होनहार बालकोंकी आभा उनके उदय होनेके पूर्व ही सूर्य-रेखाओंके समान फैलने लगती है। वे इसी अवस्थामें खेले हुए खेल, हँसी-हँसीमें किये गये संकल्प बड़े होनेपर कार्यरूपमें परिणत कर दिखाते हैं।

एक बार बालक विलिंगटनसे किसीने पूछा, "यह टाइमपीस क्या कहती है ?"

अबोध विलिंगटनने उत्तर दिया, "क्लॉक सेज़ दी टन, टन, टन एण्ड विलिंगटन वुड बी दी लार्ड ऑफ लण्डन (घड़ी कहती है, टन, टन, टन और लण्डनका लार्ड बनेगा विलिंगटन)।"

बालक विलिंगटनकी यह भविष्यवाणी आखिर सत्य निकली।

अनेकान्त, दिल्ली; १९३९ ई०

संकटमें धैर्य

दूर पहाड़ीपर बैठा हुआ नेपोलियन युद्ध-संचालन कर रहा था। उसके सिपाहियोंके पाँव उखड़ चुके थे। उप-सेनापति चाहते थे कि नेपोलियन पीछे हटने अथवा युद्ध बन्द करनेके लिए संकेत दे-दे तो बेहतर। वरना आज पराजय अवश्यम्भावी है। यह बात सुझानेको एक उप-सेनापति नेपोलियनके पास गया और ध्यान अपनी ओर आकर्षित करनेके लिए उसने अपना सिगारकेस नेपोलियनके सामने पेश किया, जिसमें कई क़िस्मके सिगार थे। नेपोलियनने युद्धकी ओर दृष्टि किये हुए ही उनमें-से सर्वश्रेष्ठ सिगार उठा लिया। उप-सेनापतिकी ओर देखा तक भी नहीं। उप-सेनापति प्रसन्नमुख वहाँसे लौट आया। उसने सोचा,

"जो ऐसे संकटके समयमें भी इतना धैर्य रखता है कि उसका मस्तिष्क घटिया-बढ़ियाके विवेकको भूल नहीं गया है, वह अवश्य विजयी होगा।" और सचमुच नेपोलियनकी सेनाको उस युद्धमें विजय मिली।

१९५० ई०

कर्त्तव्य-पालन

अमेरिकामें एक बार कुछ भद्र पुरुष लोकहितके कार्य सोचनेको एक कमरेमें एकत्र हुए। उस समय आँधी, वर्षा और भूकम्पने ऐसा दृश्य उपस्थित किया कि लोगोंने उसे प्रलय समझा। उपस्थित समूहमें-से एकने कहा,

"अब हमें समस्त कार्य छोड़कर ईश्वर-चिन्तन करते हुए मृत्युका आलिंगन करना चाहिए।"

यह बात सुनकर अध्यक्षने तुरन्त उत्तर दिया, "नहीं, हम जिस कार्यके लिए जमा हुए हैं, हमें वही करते रहना चाहिए। हमें अपना कर्त्तव्य-पालन करते रहना चाहिए। प्रलय आ रही है, हमें मरना है, इस चिन्तामें नहीं पड़ना चाहिए। ईश्वर-चिन्तनसे ईश्वरके आदेश पालन करते हुए, उसकी सृष्टिकी सेवा करते हुए मरना कहीं अधिक श्रेष्ठ है। मृत्यु आ रही है, इस भयसे अकर्मण्य होकर ईश्वर-ईश्वर जपनेकी अपेक्षा श्वास रहे, तबतक कर्त्तव्य-पालनमें जुटे रहना ही हमारा कर्त्तव्य है।"

अप्रैल १९५० ई०

राज्य-वैभव और निस्पृहता

सिकन्दर महान्‌के शासनकालमें एक 'डाओजिनीस' (Diogenese) निःस्पृही व्यक्ति हुआ है। न कोई परिग्रह, न कोई कामना, हर समय आनन्द-विभोर रहता था। सिकन्दरने जब उसकी ख्याति सुनी तो उसे भी मिलने-की अभिलाषा हुई, किन्तु डाओजिनीसके स्वभावसे दरबारी परिचित थे। न वह किसी राजाके दरबारमें जाता था, न किसी रईसको खातिरमें लाता था। अपनी धुनमें मस्त रहता था। इसीलिए लोग उसे 'मिराकी' कहा करते थे। अतः किसी दरबारीका यह साहस नहीं हुआ कि वह डाओजिनीस मिराकीको सिकन्दरके दरबारमें लानेका जिम्मा ले सके। आखिर सिकन्दर स्वयं ही उससे मिलने गया। डाओजिनीस आरामसे धूपमें लेटा हुआ था। सिकन्दरके पहुँचनेपर भी वह लेटा ही रहा। उस महान् सम्राट्‌की अभ्यर्थना करना तो एक तरफ़, उसने उसकी तरफ़ देखना भी उचित न समझा। सिकन्दरने रोबीले स्वरमें कहा,

"मैं सिकन्दर महान् हूँ।"

डाओजिनीसने लापरवाहीसे जवाब दिया, "और मुझे लोग डाओ-जिनीस मिराकी कहते हैं।"

सिकन्दर इस जवाबसे हतप्रभ-सा हो गया। वह नम्रतापूर्वक बोला, "क्या मैं आपकी कोई सेवा कर सकता हूँ।"

डाओजिनीसपर इस प्रलोभनका क्या खाक असर होता, वह उपेक्षा-भावसे बोला, "हाँ, इतना करो जरा मेरी धूप छोड़कर परे खड़े हो जाओ।"

सिकन्दर अपना-सा मुँह लेकर रह गया, और जाते हुए बोला, "अगर मैं सिकन्दर महान् न हुआ होता तो अवश्य ही डाओजिनीस मिराकी बनानेकी भगवान्‌से प्रार्थना करता।"

निःस्पृही और निस्वार्थ व्यक्तिको संसारकी महान्से-महान् शक्ति भी नतमस्तक नहीं कर सकती।

मार्च १९५१ ई०

सद्व्यवहार

सिकन्दरका प्रतिद्वन्द्वी पोरस रणक्षेत्रमें जीवित पकड़े जानेपर सिकन्दर-के सामने लाया गया। सिकन्दरने क्रुद्ध होकर कहा,

"बता, तेरे साथ मुझे कैसा व्यवहार करना चाहिए ?"

पोरसने सीना ताने हुए वीरोचित स्वरमें उत्तर दिया, "जैसा बादशाहको बादशाहके साथ करना चाहिए।"

उत्तर सुनकर सिकन्दर क्षण-भरको निस्तब्ध रह गया और तत्काल पोरसको मुक्त कर दिया। जो पोरस तिल-तिल टुकड़े कर देनेपर भी न झुकता, वही पोरस सिकन्दरके इस सद्व्यवहारसे उसका सखा बन गया।

मार्च १९५० ई०

समवेदना

अमेरिकाके राष्ट्रपति मि० एब्राहाम लिंकन अपने अनेक लोकोत्तर गुणोंके कारण काफ़ी प्रसिद्ध हुए हैं। एक बार जाते हुए मार्गमें उन्होंने कीचड़में एक बीमार सूअरको फँसे हुए देखा। देखकर भी वे रुके नहीं, आगे बढ़े चले गये; किन्तु थोड़ी दूर जानेके बाद वे पुनः वापस लौटे और अपने हाथोंसे कीचड़से सूअरको बाहर निकाला। लोगोंने हैरानीसे इसका सबब पूछा तो वे बोले,

"मैं आवश्यक कार्यमें व्यस्त होनेके कारण इसे कीचड़में फँसा हुआ देखकर चला तो गया, पर मेरे हृदयमें एक वेदना-सी बनी रही, मैंने उसी वेदनाको दूर करनेके लिए इसे निकाला है। दुखियोंको देखकर हमारे हृदयमें जो टीस उठती है, उसीको मिटानेके लिए हम दुखियोंका दुःख दूर करते हैं। इसमें उपकार और एहसानकी बात नहीं है।

मार्च १९५० ई०

डेपुटेशन

जिस यूनानने संसार-विजेता सिकन्दर महान्‌को जन्म दिया, जिस यूनानने सुक़रात, अफ़लातून, अरस्तू और लुक़मान-जैसे नर-रत्न उत्पन्न किये, और जो यूनान अपने अलौकिक चमत्कारसे संसारको चकाचौंध कर रहा था, वही यूनान भाग्यके फेरसे एक समय टर्कीके अधीन हो गया। यूनानके परतन्त्र होते ही उसकी समस्त खूबियाँ कपूरकी भाँति शनैः-शनैः विलीन होने लगीं, और विजेताओंके अवगुण गुड़पर मक्खीके समान यूनानियोंसे चिमटने लगे। पराधीन यूनानी लोहेके कटघरेमें फँसे हुए शेर-की मानिन्द सब कुछ सहनेके आदी हो गये, किन्तु टर्की-सरकार-द्वारा एक नवीन क़ानून प्रचलित होते देख, उनकी आत्माएँ तड़प उठीं, मानो कबूतरोंके कायर शरीरोंमें बाज़की शक्ति उत्पन्न हुई। इस अत्याचारके विरोधमें यूनानवालोंने आवाज़ उठायी और न्यायकी प्रार्थना करनेके लिए यूनानी प्रमुखोंका एक डेपुटेशन टर्की गया।

टर्की-सरकारकी ओरसे डेपुटेशनको शहरके बाहर एक विशाल भवनमें ठहराया गया। उसका यथोचित स्वागत किया गया और उसकी प्रार्थनापर नवीन क़ानून रद्द कर दिया गया। अभिलाषा पूर्ण हुई देखकर डेपुटेशनके सदस्योंकी बाँछें खिल गयीं। उन्होंने आत्म-गौरवका अनुभव किया और समझा कि हमसे भी कुछ मातृ-भूमिकी सेवा हो पायी है।

बातोंके सिलसिलेमें यूनानी प्रमुखने टर्की-सचिवसे कहा, "आपने हमारी अभिलाषा पूर्ण करके यूनानको चिर ऋणी बना लिया है। हम आपके इस सद्व्यवहारके लिए अत्यन्त कृतज्ञ हैं। यह सब कुछ तो हुआ,

परन्तु जब हम लोग यहाँ आये हैं, तब क्या हमें अन्दरसे शहर देखनेकी सुविधा नहीं दीजिएगा। हम देखते हैं कि हमारे चारों ओर एक गुप्त पहरा-सा लगा हुआ है, मानो हम आज्ञा प्राप्त किये बग़ैर यहाँसे बाहर भी नहीं जा सकते।"

सचिव मुसकराकर बोला, "नहीं साहब, पहरा कैसा? यह सब तो आपके आत्म-रक्षक हैं। आप यूनान जानेमें सर्वथा स्वतन्त्र हैं।"

डेपुटेशनका एक सदस्य चुटकी लेनेकी ग़रज़से बोला, "बेअदबी मुआफ़, हम यूनान जानेमें तो स्वतन्त्र हैं, किन्तु टर्की देखनेमें शायद परतन्त्र हैं?"

सचिवका खिला हुआ चेहरा गम्भीर हो गया, वह प्रसंगको बदलनेकी नीयतसे इधर-उधर करने लगा, किन्तु यूनानी प्रमुखोंके पुनः आग्रह करनेपर सकुचाते हुए बोला,

"क्षमा कीजिए, आप फिर कभी जब चाहें शहर देख सकते हैं, परन्तु इस समय नहीं, क्योंकि आप डेपुटेशन लेकर आये हैं। हमारे यहाँके बालक, युवा, वृद्ध अभीतक यही समझते हैं कि अधिकार बाहु-बल और आत्म-बलसे प्राप्त होते हैं। आपको देखकर वह यह सीख जायेंगे कि अधिकार और न्याय भीख माँगनेसे भी मिल जाते हैं। तब वह भी अकर्मण्य और मोहताज हो जायेंगे।"

सचिवके उक्त शब्द थे या बिजली, यूनानके प्रमुख निश्चेष्ट-से रह गये।

१९३४ ई०

मोह-निद्रा

विश्व-विजेता सिकन्दर जब मृत्यु-शय्यापर पड़ा छटपटा रहा था, तब उसकी माँने रुँधे हुए कण्ठसे पूछा,

"मेरे लाड़ले लाल, अब मैं तुझे कहाँ पाऊँगी ?"

सिकन्दरने बूढ़ी माँको सान्त्वना देनेकी नीयतसे कहा, "अम्मीजान, सत्रहवींवाले रोज़ मेरी क़ब्रपर आना, वहाँ मैं तुझे अवश्य मिलूँगा।"

माँकी मोहब्बत, बड़ी मुश्किलसे सत्रह रोज़ कलेजा थामकर बैठी रही। आख़िर सत्रहवींवाले दिन, रातके समय क़ब्रपर गयी। कुछ पाँवोंकी आहट पाकर बोली,

"कौन ? बेटा सिकन्दर ?"

आवाज़ आयी, "कौन-से सिकन्दरको तलाश करती है ?"

माँने कहा, "दुनियाके शाहन्शाह, अपने लख्ते-जिगर सिकन्दरको, उसके सिवा दूसरा सिकन्दर और कौन हो सकता है ?"

अट्टहास हुआ और वह पथरीली राहोंको तय करता हुआ, भयानक जंगलोंको चीरता हुआ पर्वतोंसे टकराकर विलीन हो गया।

धीमे-से किसीने कहा, "अरी बावली, कैसा सिकन्दर ! किसका सिकन्दर ! कौन-सा सिकन्दर ! यहाँके तो ज़र्रे-ज़र्रेमें हज़ारों सिकन्दर मौजूद हैं !"

वृद्धा माँकी मोह-निद्रा भंग हुई।

अनेकान्त, दिल्ली; मार्च १९३९ ई०

वीरभोग्या वसुन्धरा

भारतका प्रथम ऐतिहासिक सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य—जिसने यूनानियोंकी पराधीनतासे भारतको मुक्त किया था, जिसके बल-पराक्रमका लोहा सारे संसारने माना और जिसकी शासन-प्रणालीकी कीर्ति आज भी गूँज रही है, राज्य-वैभवमें उत्पन्न न होकर एक अत्यन्त साधारण स्थितिमें उत्पन्न हुआ था। गाँवकी गायें चराना और खेलना यही उसका दैनिक कार्य था; किन्तु बचपनमें ही उसके शुभ लक्षण प्रकट होने लग गये थे।

वह खेलनेमें स्वयं राजा बनता, किसीको मन्त्री, किसीको कोतवाल, किसीको चोर वग़ैरह बनाता। चोरोंको दण्ड और सदाचारियोंको इनाम देता। ज़रा भी उसकी आज्ञा-पालनमें हील-हुज्जत की जाती तो वह अधिकारपूर्ण शब्दोंमें कहता,

"यह राजा चन्द्रगुप्तकी आज्ञा है, इसका पालन होना ही चाहिए।"

उसका यह आत्म-विश्वास, हौसला और महत्त्वाकांक्षा देखकर भिक्षु-वेशमें खड़ा हुआ चाणक्य बड़ा विस्मित हुआ। उसने कौतुकवश बालक चन्द्रगुप्तके पास जाकर कहा, "राजन्, कुछ हमें भी दान दीजिए।"

बालक चन्द्रगुप्त चाणक्यकी बातसे न झिझका, न शर्माया। उसने राजाओंकी ही तरह आदेश दिया, "सामने जो गायें चर रही हैं, उनमें-से जो भी तुझे पसन्द हो, ले जा सकता है।"

चाणक्य मुसकराकर बोला, "महाराजाधिराज, यह गायें तो गाँव-वालोंकी हैं, वे मुझे क्यों ले जाने देंगे ?"

चन्द्रगुप्तने ज़रा भृकुटी चढ़ाकर कहा, "भोले विप्र, क्या तुम नहीं जानते 'वीरभोग्या वसुन्धरा।' किसकी मजाल है जो मेरे आदेशकी अवहेलना कर सके ?"

बालक चन्द्रगुप्तका यह संकल्प सही निकला और वह अपनी युवा-वस्थामें ही साधन-हीन होते हुए भी सचमुच सम्राट् बन बैठा।

जुलाई १९३२ ई०

माँके संस्कार

सिद्धराज चावडा काठियावाड़का एक अत्यन्त प्रसिद्ध सदाचारी वीर पुरुष हुआ है। किसी मनचले राजाने अपने पुत्रको भी इसी ढंगका बना देनेके लिए अपने राज्य-पण्डितको आदेश दिया। आदेश सुनकर राज्य-पण्डित बोला, "अन्नदाता, आपका पुत्र शिक्षा-द्वारा सिद्धराजके समान बन तो सकता है, किन्तु उसकी मातामें सिद्धराजकी जननी-जैसे गुण भी विद्यमान हैं क्या ?"

राजाके पूछनेपर कहा, "जब सिद्धराज अबोध बालक था, तब वह एक रोज पालनेमें सो रहा था, उसकी माता उसे झुला रही थी कि अकस्मात् सिद्धराजके पिता वनराज आ गये और वह रानीसे हँसी करने लगे। रानीने कहा, "आप पर-पुरुषके सामने मेरी लाज गँवाते हैं, यह क्या ठीक है ?"

राजाके पूछनेपर रानीने बालककी ओर संकेत कर दिया। वनराजने इसे कुछ भी न समझा और वह और भी छेड़-छाड़ करने लगे। भाग्यकी बात सिद्धराजने, जिसकी आयु तब केवल दो माहकी थी, मक्खी वग़ैरहके बैठनेसे मुँह फेर लिया। रानी चौंकी, "हे भगवान्, यह सब कुछ बालकने देख लिया और उसने मारे आत्मग्लानिके विष खा लिया।" राज्य-पण्डितसे उक्त घटना सुनकर मनचले राजाकी—अपने पुत्रको भी सिद्धराज-जैसा बनानेकी—अभिलाषा विलीन हो गयी।

१९२८ ई०

वीर महिला

आमेरके विख्यात महाराजा जयसिंहने कोटेकी राजकुमारीके साथ विवाह किया था। उस कोटेकी राजबालाका स्वभाव, उसका आचरण और वेश अत्यन्त सरल और आडम्बरहीन था, किन्तु आमेरके अन्तःपुरमें बहुमूल्य आभूषण एवं रंग-बिरंगे क़ीमती वस्त्र पहननेका प्रचलन था। कोटेकी राजकुमारी विलासप्रिय न होकर वीर-स्वभावकी थी, वह सदैव स्वच्छ और सादगीसे रहती थी। एक बार महाराज जयसिंहने कहा, "कोटेकी राज-रानियोंकी अपेक्षा हमारे यहाँकी नीच जातिकी स्त्रियाँ भी अच्छे सुन्दर रमणीक वस्त्र और आभूषण पहनती हैं।"

कुछ देरके पश्चात् एक काँचका टुकड़ा लेकर रानीके पहने हुए वस्त्रोंको काटने लगे। कोटेकी राजकुमारीने यह कृत्य अपनी आत्म-प्रतिष्ठा और स्वाभिमानका घातक समझा। चट पासमें रखी हुई तलवार उठा ली और गरजकर बोली, "मैंने जिस वंशमें जन्म लिया है, वह राजवंश कदापि इस प्रकारकी घृणा और उपहासके योग्य नहीं है। आप इस बातको स्मरण रखिए कि स्त्री-पुरुषोंमें पारस्परिक प्रेम, सद्‌भाव, सम्मान होनेसे दाम्पत्य-सुख ही नहीं, अपितु धर्मकी भी रक्षा होती है।" फिर उस वीरबालाने कहा, "महाराज, यदि विलासिता चाहते हो, तो वेश्याओंके यहाँ जाओ, मुग़लोंकी चौखटें चूमो, मैं वीरबाला हूँ, वीर-वेश पहनना जानती हूँ, रणका साज सजाना जानती हूँ और जानती हूँ, तलवारके हाथ। आओ सामने, तब आप भली प्रकार समझेंगे कि आमेरके राजकुमार काँचके टुकड़ोंको चलानेमें इतने चतुर नहीं हैं, जितनी कोटेकी राजकुमारी तलवारके हाथ चलानेमें निपुण है।"

विलासी महाराज भौंचक-से रह गये। वीर-क्षत्राणीका वीर रूप देखकर

उनकी विलासिता नष्ट हो गयी। नम्रतापूर्वक बोले, "देवी, क्षमा करो, मैंने तुम्हें समझनेमें भूल की। वास्तवमें तुम्हारी-जैसी वीरबालाओंसे ही आज आर्य-जातिका गौरव है। अन्यथा हमारे-जैसे विलासी तो कभीके हिन्दू जातिको रसातलमें भेज चुके होते।"

१९२८ ई०

नोट—पृ० १४० से १६३ तककी कहानियाँ मेरी उन दिनोंकी प्रारम्भिक रचनाएँ हैं जब कि मैं नया-नया रंगरूट कलम चलानेका अभ्यास कर रहा था और मेरा रोम-रोम देशकी स्वाधीनताके लिए तड़पता था। देश-विदेशके शहीदोंके तप-त्याग एवं बलिदानके वर्णन पढ़कर कभी रोता था, कभी पुलक उठता था। उसी भावावेशमें टाड् राजस्थानके स्वाध्यायके परिणाम-स्वरूप ये कहानियाँ लिखी गयीं और वीर-सन्देश, महारथी आदिमें प्रकाशित भी हुईं। लेखन-शैलीके विकास-क्रमकी जानकारीके लिए ये कहानियाँ ज्योंकी-त्यों दी जा रही हैं

—गोयलीय

क्षत्राणीका आदर्श

शाहजहाँके दारा, शुजा, औरंगज़ेब और मुराद—ये चार लड़के और जहाँनारा और रोशनारा दो लड़कियाँ थीं। शाहजहाँके बीमार पड़ते ही शोणित-लोलुप क्षुधित व्याघ्रकी तरह चारों भाई आपसमें कट मरे। वह शाहजहाँके अन्तिम काल तक मयूर-सिंहासनके लोभको न दबा सके।

शाहजहाँके अनुरोध पर मारवाड़-केसरी राजा यशवन्तसिंह तीन सहस्र राजपूत-सेना लेकर पितृद्रोही औरंगज़ेबका आक्रमण रोकनेके लिए उज्जैन जा पहुँचे, किन्तु कूटनीतिज्ञ औरंगज़ेबके षड्यन्त्रके सामने उनकी वीरता काम न आयी। अन्तमें उन्हें रणक्षेत्रका परित्याग करना पड़ा।

राजा यशवन्तसिंहका शिशोदिया राजकुमारीके गर्भसे जन्म हुआ था। और शिशोदिया कुलकी ही एक वीरबालाके साथ विवाह हुआ था। पवित्र शिशोदिया-कुलमें विवाह कर पानेपर राजपूत राजा अपनेको पवित्र और कृतार्थ समझते थे। राजा यशवन्तसिंहकी स्त्री अपने उच्चकुलके अनुरूप ऊँचे गुणों और लक्षणोंसे विभूषित थी। जब उसने उज्जैनके युद्धका वृत्तान्त सुना कि उसके पतिकी प्रायः समस्त सेना नष्ट हो गयी है और वह शत्रुको पराजित न कर रण-भूमिसे चला आया है। वह मारे आत्मग्लानिके रो पड़ी और उसी आवेशमें सोचने लगी,

"न जाने मेरे कौन-से पापकर्मका उदय है, जो मुझे ऐसा क्षत्रियकुल-कलंकी पति मिला। अच्छा होता जो मैं विवाही न जाती, कायर-पत्नी तो न कहलाती। विषपान कर लूँगी, जीते-जी आगमें कूदकर प्राण दे दूँगी, किन्तु कायर-पत्नी न कहलाऊँगी। जब कि मेरे पूर्वज, शरीरमें

रक्तकी एक बूँद रहने तक, शत्रुओंका मान-मर्दन करते रहे हैं, तब मेरा पति शत्रुके भयसे भागकर आवे और मैं उसे छिपा लूँ? वीर-दुहिता होकर कायर-पत्नी कहलाऊँ? लोग क्या कहेंगे? सहेलियाँ ताना मारेंगी और पिताजी तो मेरा मुँह देखना भी पाप समझेंगे। ओह, हृदयमें कैसी-कैसी उमंगें थीं। विजयी होकर आयेंगे, आरती उतारूँगी, उनकी चरण-रज लेकर सुहागकी चूनरीमें बाँधूँगी, तलवारका रक्त लेकर मेंहदी रचाऊँगी, उनके ज़ख्मोंको अपने हाथसे धोऊँगी, उनके शत्रु-संहार-रण-कौशलको सुनकर मैं आपेमें न रहूँगी, मारे गर्वके मेरी छाती फूल उठेगी। दोनों मिलकर मातृ-भूमिकी वन्दना करेंगे, किन्तु यह सब स्वप्न था, जो अँधेरी रात्रिके सन्नाटेमें देखा गया था। आह! युद्ध-भूमिमें वीर-गतिको भी प्राप्त न हुए, नहीं तो साथमें सती होकर जीवन सुधार लेती।"

रोते-रोते शिशोदिया राजकुमारीके मुखमण्डलने भयावनी मूर्त्ति धारण कर ली। वह सर्पिणीके समान फुँफकार कर बूढ़े द्वारपालसे बोली, "मैं कायर पतिका मुँह देखना नहीं चाहती। इस वीर-प्रसवा भूमिमें रणसे भयभीत मनुष्यको आनेका अधिकार नहीं, अतएव मेरी आज्ञासे दुर्गके दरवाज़े बन्द कर दो।"

द्वारपाल थर-थर काँपने लगा, उसकी बुद्धिको काठ मार गया। वह गिड़गिड़ाकर बोला, "महारानीजीका सुहाग अटल रहे। मैं आपकी आज्ञा-पालनमें असमर्थ हूँ, वह हमारे महाराजा हैं, जीवनदाता हैं।"

रानी : "नहीं! अब वह जीवनदाता नहीं। जो प्राणोंके भयसे भागकर स्त्रीके आँचलमें छिपे, वह जीवनदाता नहीं। जीवनदाता वह है, जो सर्व-साधारणके हितार्थ अपना जीवनदान करनेको सदा प्रस्तुत रहे।"

द्वार० : "महारानीजी, वह हमारे अन्नदाता हैं।"

रानी : "असम्भव! जो दासत्व-वृत्ति स्वीकार कर चुका है, परतन्त्रताके बन्धनमें जकड़ा जा चुका है, जो दूसरेकी दी हुई सहायतासे अपनेको सुखी समझता है, वह अन्नदाता नहीं।"

द्वार० : "वह परतन्त्र नहीं, अपितु यवन बादशाहके दाहिने हाथ हैं।"

रानी : "वह भी किसलिए ? अपने देशवासियोंको नीचा दिखानेके लिए। मायावी यवन बादशाह काँटेसे काँटा निकालना चाहता है।"

द्वार० : "अर्थात् ?"

रानी : "यही कि वह कुछ राजपूतोंको अपने पक्षमें करके भारतके समस्त राजपूतोंको शिखंडी बनाना चाहता है। भारतके हाथों भारत-सन्तानका पतन चाहता है। भोले द्वारपाल, याद रखो, स्वामी सेवकका चाहे जितना आदर क्यों न करे, चाहे मणिमुक्ताओं और सोनेसे उसको क्यों न सजा दे, परन्तु जो दास है, वह तो सदा दास ही रहेगा !"

द्वार० : "महारानीजी, आपका कथन सत्य है, किन्तु पति फिर भी पति है, उसका अपमान करनेसे क्या लाभ ? क्षमा कीजिए, मैं आपको कुछ सीख नहीं दे रहा हूँ, परन्तु फिर भी पुराना सेवक होनेका अभिमान रखते हुए, मैं यह प्रार्थना करता हूँ, कि आप इस समय तो उन्हें अन्तःपुरमें बुलाकर सान्त्वना दें, पश्चात् क्षत्रियोचित कर्त्तव्यका ज्ञान करानेके लिए कुछ उतार-चढ़ावकी बातें भी करें ! इसके विपरीत करनेसे जग-हँसायी होगी और प्रजा भी उद्दण्ड हो जायेगी।"

द्वारपालके समय-विरुद्ध व्याख्यानको सुनकर शिशोदिया-कुलोत्पन्न वीरांगना झल्ला उठी, किन्तु द्वारपालकी स्वामि-भक्तिने क्रोधके पारेको आगे न बढ़ने दिया, वह सहमकर बोली,

"तुझसे अधिक मेरे हृदयमें उनका मान है। वह मेरे ईश्वर हैं, मेरे देवता हैं, मैं उनकी पुजारिन हूँ; परन्तु मालूम होता है वृद्धावस्थामें तेरी बुद्धिपर पाला पड़ गया है, वीरताको जंग लग गया है, नहीं तो ऐसी बातें नहीं करता। क्या तू नहीं जानता कि मारवाड़ वीर-प्रसवा भूमि है ? यहाँके निवासी युद्धसे भागना नहीं जानते, वह जानते हैं युद्धमें कटकर मरना। जब मारवाड़ी वीरोंको मालूम होगा कि यहाँ युद्धसे भागे हुए कायरको भी शरण मिल सकती है, उसका भी आदर होता है, तब वह

भी यह कुटेव सीख जायेंगे। अतएव मैं नहीं चाहती कि मेरे देशवासी कायर बनें।"

वृद्ध द्वारपाल अवाक् रह गया। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़की नाईं पृथ्वी कुरेदने लगा।

× × ×

शिशोदिया राजकुमारीकी सास भी छिपी हुई यह सब कुछ सुन रही थी। पुत्रवधूके वीरोचित शब्दोंसे यशवन्तकी जननीका रक्त खौल उठा। यह वास्तवमें उसका अपमान था। वह दुःखमें अधीर हो उठी। पुत्रको पुनः रणक्षेत्रमें कैसे भेजूँ—वह यही सोचने लगी। अन्तमें उसने क्रोधको दबाकर गरम लोहेको ठण्डे लोहेसे काटा। यशवन्तसिंहको बुलाकर सदाकी भाँति प्यार करके भोजन जिमाने लगी। सुवर्णके बजाय लोहेके वर्त्तन देखकर यशवन्तसिंह क्रुद्ध हो गये। राज-माता भी दासियोंपर कृत्रिम क्रुद्ध होकर बोली, "देखती नहीं हो, मेरा बेटा तो पूर्व ही लोहेसे डरकर यहाँ भाग आया है, फिर लोहा हो उसके सामने ला रखा!" माताके इस व्यंग्यसे यशवन्तसिंह कट-से गये। राजमाता अपने उपदेशका अंकुर जमने योग्य भूमि देखकर बोली,

"यशवन्त, वास्तवमें तू मेरा पुत्र नहीं। तुझे बेटा कहते हुए मैं मारे आत्म-ग्लानिके गड़ी जा रही हूँ। यदि तू मेरा पुत्र होता तो शत्रुको पराजित किये बिना न आता। तुझमें मान नहीं, साहस नहीं, अभिमान नहीं, तू कुल-कलंकी है, कायर है, शिखण्डी है, तूने राजपूत कुलमें जन्म लेकर, इसके उज्ज्वल मुखमें कलंक लगा दिया। बहूका आत्माभिमान देखकर मेरी छाती गर्वसे फूल उठी है, किन्तु साथ ही दारुण अपमानके मारे मैं मरी जा रही हूँ। एक तो वह वीर-प्रसवा क्षत्राणी, जिसने ऐसी वीर-बालाको जन्म दिया, और एक मैं, जिसने तेरे जैसे कुलांगारको उत्पन्न किया! धिक्कार है मेरे पुत्र प्रसव करनेको! अच्छा होता जो मैं वन्ध्या होती, अथवा तेरी जगह ईंट-पत्थर प्रसव करती जो मकानोंके तो काम

आते। अस्तु, जो होना था सो हो चुका, किन्तु ठहर, मैं तेरा जीवन समाप्त कर देना चाहती हूँ। बहू कायर-पत्नी नहीं कहलाना चाहती, तो मैं भी कायर-पुत्रको जीवित रखना नहीं चाहती।"

क्रोधके आवेशमें वीर-माता कटार निकालकर मारना ही चाहती थी, कि यशवन्तसिंह रोकर पैरोंपर गिर पड़े। फिर तलवार निकालकर प्रतिज्ञा की, "माता, जबतक मैं जीवित रहूँगा, युद्धमें रहूँगा, युद्धसे कभी विमुख नहीं होऊँगा। जबतक शत्रुओंका नाश नहीं कर लूँगा, कभी सुखसे न बैठूँगा।"

जून १९२८ ई०

सेवकका कर्त्तव्य

मेवाड़-केसरी महाराणा प्रताप मौतके शिकंजेमें जकड़े हुए थे। वह लोहेके कटघरेमें फँसे हुए शेरकी भाँति रोग-शय्यापर पड़े छटपटा रहे थे। अस्फुट वेदनाके चिह्न उनके मुखसे भली भाँति प्रकट हो रहे थे। आँखोंके कोनेमें छिपे हुए आँसू मौन-वेदनाका सन्देश दे रहे थे। वीर-चूड़ामणि महाराणा प्रतापने पूर्वजोंकी बनायी हुई गगनचुम्बी अट्टालिकाओंको छोड़कर पीछोला सरोवरके किनारेपर कई एक झोपड़ियाँ बनवायी थीं, उन्हीं कुटियोंमें अपने समस्त सरदारोंके साथ राणाजी अपना राजर्षि-जीवन व्यतीत करते थे। आज अन्तकालके समय भी उन्हींमें-से एक साधारण कुटीमें रुग्ण-शय्यापर लेटे हुए क्रूरकालकी बाट जोह रहे थे। इतनेमें ही प्रचण्ड वेगसे शरीरको कम्पायमान करती हुई एक साँस राणाजीके मुँहसे निकली। समीपमें बैठे हुए उनके जीवनके सखा, मेवाड़के सामन्त और सरदार, उनकी इस मर्मान्तिक वेदनाको देखकर काँप उठे। शालुम्ब्रा सरदार कातर होकर रुँधे हुए स्वरमें बोले, "अन्नदाता, इस अन्तिम समयमें आपको ऐसी क्या चिन्ता है? किस दारुण दुःखके कारण आप छटपटा रहे हैं? आपका यह दीर्घ निःश्वास हमारे हृदयमें तीरकी तरह लगा है। यदि कोई अभिलाषा है, तो कृपा करके कहिए, हम सब आपकी इस अन्तिम इच्छाको जीवनके अन्त समय तक अवश्य पूर्ण करेंगे।"

मेवाड़का वह टिमटिमाता हुआ दीपक शालुम्ब्रा सरदारके आश्वासन-रूपी तेलको पाकर फिर प्रज्वलित हो उठा। महाराणा प्रताप अपने शरीरकी पूर्ण शक्ति लगाकर बड़े कष्टसे बोले, "प्यारे सखा, पूछते हो मुझसे, क्या कष्ट है? मेरे भोले सरदार, इतने भोलेपनका प्रश्न! मेरी मातृ-भूमि चित्तौड़ जो मेरे पूर्वजोंकी क्रीड़ास्थली थी, जिसके लिए मुसक-

राते हुए उन्होंने अपने प्राणोंकी आहुतियाँ दीं, उसे मैं यवनोंके चंगुलसे नहीं छुड़ा सका, मैं अपने प्यारे देशवासियोंको चित्तोड़की पवित्र भूमिपर स्वतन्त्र विचरते हुए न देख सका; यह क्या कम कष्ट है ? यही दारुण वेदना मेरे प्राणोंको रोके हुए है।''

शालुम्ब्रा सरदार मस्तक झुकाकर बोले, ''श्रीमान्, आपकी यह पवित्र अभिलाषा अवश्य पूर्ण होगी। आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करके एकाग्रचित्तसे भगवान्का स्मरण करिए....''

शालुम्ब्रा सरदारके वाक्य पूर्ण होने तक महाराणा प्रतापका विषादपूर्ण पीतमुख गम्भीर हो गया, वह बीचमें ही बात काटकर बोले,

''ओह शालुम्ब्रा सरदार, मुझे वाक्-पटुतामें न फँसाओ। मुझे इस समय धर्मोपदेशकी आवश्यकता नहीं। देश परतन्त्र रहे, और मैं इस अन्त समयमें भगवान्का स्मरण करके परलोक सुधारूँ ! छि: ! कैसी वाग्विडम्बना है ? मेरे मित्र, याद रखो, जो इस लोकमें परतन्त्र हैं, वह परलोकमें भी परतन्त्र रहेंगे। जो व्यक्ति अपने देशवासियोंको दु:ख-सागरमें बिलखते देखकर अकेला मोक्ष पाना चाहता है, वह न तो मोक्ष पाता है, न पानेके योग्य है। त्रिशंकुकी तरह उसको बीचमें ही लट-कना पड़ता है। यदि मेरे नरकमें रहनेसे भी मेरा देश स्वतन्त्र हो सकता है तो मैं नरककी दुस्सह वेदना सहन करनेको प्रस्तुत हूँ। बोलो, बोलो, क्या कहते हो ? शपथ करो कि इन विदेशियोंका विध्वंस करके मातृ-भूमिको स्वतन्त्र कर देंगे।

सामन्त और सरदार व्यग्र हो उठे, राणाजीकी यह अभिलाषा क्योंकर पूर्ण होगी ? जीवनभर लड़ते हुए भी जिसे अपना न कर सके, उसे अब कैसे स्वतन्त्र कर सकेंगे ? तब भी सन्तोषके लिए आश्वासन देते हुए बोले, ''भारत-सम्राट्, आपकी यह अभिलाषा वीरोचित है। आप विश्वास रखिए, श्री बापजीराव (युवराज अमरसिंह) आपकी इस अन्तिम कामनाको श्री एकलिंगजीकी कृपासे अवश्य पूर्ण करेंगे।''

वीर-शिरोमणि महाराणा प्रताप घायल सिंहकी तरह दहाड़कर बोले, "अमर चित्तौड़को तो क्या स्वतन्त्र करेगा, वह रहे-सहे मेवाड़के गौरवको भी खो बैठेगा। उसके आगे मेवाड़की पवित्र भूमि यवनोंके पाद-प्रहारसे कुचली जायेगी।"

समस्त सरदार एक स्वरसे बोल उठे, "अन्नदाता! ऐसा कभी न होगा।"

जिस प्रकार दीप-निर्वाण होनेके पूर्व एक बार प्रज्वलित हो उठता है उसी प्रकार राणाजी शक्ति न रखते हुए भी आवेशमें कहने लगे, "मैं कहता हूँ, ऐसा अवश्य होगा। युवराज अमर सिंह हमारे पितृ-पुरुषोंके गौरव-की रक्षा नहीं कर सकेगा। वह यवनोंसे युद्ध न करके मेवाड़की कीर्ति-रूपी स्वच्छ चादरपर विलासिताका स्याह धब्बा लगा देगा...."

कहते-कहते उनका गला रुँध गया। सरदारके दो घूँट पानी पिलानेके पश्चात् क्षीण स्वरसे बोले, "एक समय कुमार अमरसिंह उस नीची कुटीमें प्रवेश करनेके समय सिरकी पगड़ी उतारना भूल गया था। इस कारण सिरकी पगड़ी द्वारके निकले हुए बाँसमें लगकर नीचे गिर पड़ी। अमरसिंहने इस कुटीके महत्त्वको कुछ भी न समझा और दूसरे दिन मुझसे कहा कि यहाँपर ऊँचे-ऊँचे महल बनवा दीजिए।"

युवराज अमरसिंहके बाल्यकालकी गाथा कहते हुए राणाजीका पीत-मुख और भी गम्भीर हो गया। उन्होंने फिर एक लम्बी साँस ली और बोले, "इन कुटियोंके बदले यहाँ रमणीय महल बनेंगे। मेवाड़की दुरवस्था भूलकर अमर यहाँपर अनेक प्रकारके भोग-विलास करेगा। उससे इस कठोर व्रतका पालन नहीं होगा। हा! अमरसिंहके विलासी होनेपर वह गौरव और मातृभूमिकी वह स्वाधीनता भी जाती रहेगी, जिसके लिए मैंने बराबर पचीस वर्ष तक वन-वन और पर्वत-पर्वतपर घूमकर वनवासका कठोर व्रत धारण किया। जिसको अचल रखनेके लिए सब भाँतिकी सुख-सम्पत्ति-को छोड़ा। शोक है कि अमरसिंहसे इस गौरवकी रक्षा न होगी। वह

अपने सुखके लिए उस स्वाधीनताके गौरवको छोड़ देगा और तुम लोग, उसके अनर्थकारी उदाहरणका अनुसरण करके मेवाड़की पवित्र और धवल कीर्तिमें कलंक लगा दोगे।"

महाराणाका वाक्य पूरा होते ही समस्त सरदार मिलकर बोले, "क्षमा अन्नदाता, महाराज, हम लोग बप्पारावलके पवित्र सिंहासनकी शपथ खाकर कहते हैं कि जबतक हममें-से एक भी जीवित रहेगा, उस दिन तक कोई तुरक मेवाड़की भूमिपर अधिकार नहीं पा सकता। जबतक मेवाड़ भूमिकी स्वाधीनता पूर्ण भावसे प्राप्त न कर लेंगे, तबतक इन्हीं कुटियोंमें हम लोग रहेंगे।"

सरदारोंकी वीरोचित शपथ सुनकर हिन्दू-कुल-भूषण वीर-चूड़ामणि राणा प्रतापके नयन-झरोखोंसे आनन्दाश्रु झलकने लगे। वह नेत्र विस्फारित करते हुए "भारत माताकी जय", "मेवाड़ भूमिकी जय" इतना ही कह पाये थे, कि उनकी आत्मा स्वर्गासीन हो गयी। मेवाड़वासी दहाड़ मारकर रोने लगे, मेवाड़ अनाथ हो गया।

× × ×

वीर-केसरी प्रतापके स्वर्गासीन होनेपर युवराज अमरसिंहको राघव-वंशीय सूर्यकुल-भूषण बप्पारावलके पवित्र सिंहासनपर बैठनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। महाराणा अमरसिंहमें असाधारण गुण थे। उन्होंने अपने शासन-कालमें मेवाड़में कई आदर्श सुधार किये, किन्तु, स्वेच्छाचारिता और विलासिता दो ऐसे अवगुण हैं, जो मनुष्यके अन्य उत्तम गुणोंपर भी परदा डाल देते हैं। दुर्भाग्यसे राणा अमरसिंह भी प्लेग, हैज़ेके समान उड़-कर लगनेवाली विलासितारूपी बीमारीसे न बच सके। वे दिन-रात आमोद-प्रमोदमें रहने लगे। उनके पूर्वज क्या थे, इस समय मातृ-भूमि कैसे संकटमें है, भारतीय आर्य-ललनाओंकी कैसी दुरवस्था है, इस बातकी न तो उन्हें कुछ खबर ही थी, और न कुछ चिन्ता। वे दिन-रात महलोंमें पड़े हुए चापलूसोंके साथ अनेक क्रीड़ाएँ किया करते। जो झूठ बोलनेमें,

बातें बनानेमें, मायाचारी करनेमें, जितना सिद्धहस्त होता, वह उतना ही प्रेम-पात्र बन सकता था। सच्चे देश-भक्त, वीर और आनपर मर मिटनेवाले उनके यहाँ घमण्डी और पागल समझे जाने लगे। संसारमें क्या हो रहा है, इसकी उनको तनिक भी परवाह नहीं थी। ऐसे ही दुर्दिनोंमें उचित अवसर जान जहाँगीरने मेवाड़पर आक्रमण कर दिया। मातृभूमिपर संकट आया देख, कुछ वीर-सैनिकोंका हृदय धक-धक करने लगा। उनके नेत्रोंके सामने भविष्यमें आनेवाले संकट चल-चित्रके समान नाचने लगे। ऐसे संकटके समय भी राणाजी विलासितामें डूबे हुए, अपने चापलूस मित्रोंके साथ आमोद-प्रमोदमें मस्त हैं, मेवाड़-रक्षक आज भी कायरोंकी भाँति ज़नानेमें घुसे हुए हैं। इन्हीं बातोंको देखकर वह मुट्ठी-भर राजपूत विकल हो उठे। उनकी हृदय-तन्त्री कर्त्तव्य-पालन करनेके लिए बार-बार प्रेरित करने लगी। शालुम्ब्रा सरदार वीर चुण्डावतको राणा प्रतापकी कही हुई बात इस समय बिलकुल ठीक जँचने लगी। इसी समय उन्हें अकस्मात् प्रतापके सामने की हुई प्रतिज्ञा याद हो आयी। वह मेवाड़के वीर सैनिकोंकी एक टोली बनाकर राणाजीके महलोंमें जा पहुँचे। चुण्डावत सरदारकी उग्र मूर्त्ति देखकर राणाजी सहम गये, तब भी वे हँसकर बोले, "कहिए शालुम्ब्रा सरदार! इस समय कैसे पधारे?" राणा अमरसिंहके इस व्यंग्य-भरे प्रश्नसे चुण्डावत सरदार कुछ कट-से गये, वह कड़ककर बोले,

"देशपर आपत्तिकी घनघोर घटा छायी हुई है, यवनेश अपनी असंख्य सेना लेकर मेवाड़पर चढ़ आया है; फिर भी आप पूछते हैं कि इस समय कैसे पधारे? विजेताओंके अत्याचारसे लाखों युवतियाँ विधवा हो जायेंगी, उनका बलपूर्वक शील नष्ट किया जायेगा। हमारे धार्मिक मन्दिर-पृथ्वीमें समतल कर दिये जायेंगे। मेवाड़की कीर्ति लुप्त हो जायेगी। सब कुछ जानते हुए भी मेवाड़-नरेश, यह अनभिज्ञता कैसी?"

चुण्डावत सरदारके उक्त मर्मान्तिक वाक्य राणाजीके हृदयमें लगे तो,

किन्तु व्यर्थ ! उनकी काम-वासनाने, विद्वत्ता, वीरता, स्वाभिमान, मनुष्यता सभीपर परदा डाल रखा था। वे सरदारको टालनेके अभिप्रायसे बोले, "तब मैं क्या करूँ ?"

"आप क्या करें ! राणा संग्रामसिंहने क्या किया था ? राणा लक्ष्मण-सिंहके बारह पुत्रोंने क्या किया था ? वीर जयमल और पत्तेने क्या किया था ? और आपके यशस्वी पिताने क्या किया था ? जो उन्होंने किया, वही आप कीजिए। जिस पथका अवलम्बन उन्होंने किया, उसीका अनु-सरण आप भी कीजिए।"

"मैं व्यर्थका रक्तपात करके अपने हाथोंको कलंकित नहीं करना चाहता।"

"अच्छा, आप रक्त-पात न कीजिए, परन्तु अपना ही रक्त बहाइए।"

"इसका तात्पर्य ?"

"यही कि आपकी विलासिता और अकर्मण्यतासे जो मेवाड़वासी अनुत्साही हो गये हैं—उनके हृदयकी वीरता शुष्क हो गयी है—वह आपके रक्त-संचारसे फिर हरी-भरी हो जायेगी !"

"तो क्या मैं मर जाऊँ ?"

"हाँ, जो युद्ध नहीं करना चाहता—अहिंसक है—वह मातृभूमिके ऋणसे उऋण होनेके लिए स्वयं उसकी वेदीपर बलि हो जाये।"

"कोई आवश्यकता नहीं, चुण्डावत सरदार, इस समय तुम यहाँसे चले जाओ।"

"मैं नहीं जा सकता"—इतना कहकर क्रोधमें भरे हुए चुण्डावत सरदार-ने सामने लगे हुए बिल्लोरी आइनेको पत्थर मारकर तोड़ डाला और सैनिकोंको आज्ञा दी कि कर्त्तव्य-विमुख राणाजीको घोड़ेपर बिठाओ। आज हम फिर एक बार लोहा बजाकर अपनी मातृ-भूमिका मुख उज्ज्वल करेंगे ! राणा प्रतापके समक्ष की हुई प्रतिज्ञा आज सार्थक करेंगे।

सैनिकोंने राणाजीको बलपूर्वक घोड़ेपर बिठा दिया। राणाजी क्रोधके

आवेशमें चुण्डावत सरदारको राजद्रोही, विश्वासघाती, उद्दण्ड आदि अनेक उपाधियाँ वितरण करने लगे। सैनिकों और सरदारोंका इस ओर ध्यान ही नहीं था। वे सब बड़े चावसे झूमते हुए राणाजीको घेरे हुए रण-क्षेत्रकी ओर चल दिये। मार्गमें चलते हुए राणाजीकी मोह-निद्रा दूर हुई। उन्हें चुण्डावत सरदारका यह कार्य उचित जान पड़ा। उन्हें अपनी अकर्मण्यतापर पश्चात्ताप होने लगा। वे सरदारको सम्बोधन करके बोले, "शालुम्ब्रा सरदार, वास्तवमें आज तुमने वह वीरोचित कार्य किया है, जिसकी याद सदैव बनी रहेगी। तुमने मुझे विलासिताके अँधेरे कूपसे निकालकर मेवाड़का मुख उज्ज्वल किया है। इसके लिए मेवाड़ तुम्हारा कृतज्ञ रहेगा। अब तुम देखोगे, प्रतापका पुत्र, बप्पारावलका वंशधर कहलाने योग्य है अथवा नहीं? आज रण-क्षेत्रमें इसकी परीक्षा होगी।"

शालुम्ब्रा सरदार हाथ जोड़कर बोले, "राणाजी, यदि कुछ अपराध हुआ है तो क्षमा कीजिए। स्वामीको कुपथसे निकालकर सुमार्गपर लाना सेवकका कर्त्तव्य है; मैंने कोई नया कार्य नहीं किया, केवल सेवकने अपना कर्त्तव्य पालन किया है।"

× × ×

राणा अमरसिंह अपने वीर सैनिकोंको लेकर जहाँगीरकी सेनापर बाज़की तरह झपट पड़े और अपने अतुल पराक्रम-द्वारा जहाँगीरका मान मर्दन कर दिया। थोड़े दिनों बाद अमरसिंहने चित्तौड़गढ़को मुग़ल बादशाहकी पराधीनतासे मुक्त कर लिया। इस प्रकार राणा प्रतापकी अन्तिम अभिलाषा पूर्ण हुई।

मार्च १९३३ ई०

वीर नारी

युवतीने क्रोधके वेगको रोककर कहा, "कविजी, कविता फिर भी रची जायेगी, इस समय अपनी इज़्ज़त बचाओ।"

यह कवि बीकानेर महाराज रायसिंहके भाई थे। जब बीकानेर-नरेशने अपनी लड़की अकबरको दी, तो इन्होंने उनका तीव्र प्रतिवाद किया और वे लड़नेके लिए तैयार हो गये। इसपर वे आगरेमें नज़र-क़ैद कर लिये गये। इन्हें कविता करनेका व्यसन था। अकबर बादशाह इनकी कविता चावसे सुनता था। हर समय इन्हें यही एक धुन रहती थी। इनका नाम पृथ्वीराज था। अन्यमनस्क भावसे बोले,

"क्यों, क्या हुआ? प्राणप्रिये, इस समय मुझे क्षमा करो, मुझे एक समस्या-पूर्त्ति करनी है, इसलिए···"

युवती : [बात काटकर] "तो साफ़ क्यों नहीं कहते, कि इस समय चली जा, नहीं तो कविता अच्छी न बन सकेगी।"

पृथ्वी० : "अच्छा, यही समझ लो।"

युवती : "मैं ख़ूब समझ चुकी हूँ। यदि यही अकर्मण्यता न होती, तो आपको इस प्रकार दासत्व-वृत्ति स्वीकार नहीं करनी पड़ती। देशके ऊपर आपत्तिकी घनघोर घटा छायी हुई है, और आप कविता करने बैठे हैं। धिक्कार है आपकी कविताको, फिटकार है आपकी बुद्धिको, लानत है आपकी सूझको!"

पृथ्वी० : "तो क्या कविता करना छोड़ दूँ?"

युवती : "अवश्य!"

पृथ्वी० : "ध्यान रहे, संसारमें सब वस्तु मिट सकती हैं, परन्तु कृति

नहीं मिटती ।"

युवती : "मैं सौगन्धपूर्वक कहती हूँ कि संसारमें सब कुछ मिट सकता है, परन्तु कुलमें लगा हुआ कलंक कभी नहीं मिटता ।"

पृथ्वी० : "कवितासे सैनिकोंके हृदयमें वीर-भाव पैदा होते हैं । चन्दबरदाईका नाम उसकी कविताके कारण अमर हो गया है ।"

युवती : "हाँ, यदि कवितामें हृदयके भाव हों, और स्वयं कवि भी अपने कथनानुसार कर्मवीर हो तब न ? जब लोगोंको यह मालूम होगा कि यह कृति उस अकर्मण्यकी है, जो परतन्त्रताके बन्धनमें जकड़ा हुआ था, जो अपनी बहनका सर्वनाश आँखोंसे देखता रहा, तब वह आपकी कृतिका उपहास करेंगे । चन्दबरदाईका नाम कविताके कारण नहीं, उसकी वीरताके कारण अमर है ।"

पृथ्वी० : "साहित्य और संगीतसे रहित मनुष्य पशु है ।"

युवती : "यदि किसी घरमें आग लगी हो, तो उसके निवासियोंको गाते-बजाते देखकर तुम क्या कहोगे ?"

पृथ्वी० : "मूर्ख कहूँगा, और क्या ?"

युवती : "क्यों ? गाना तो कोई बुरी चीज़ नहीं ।"

पृथ्वी० : "बुरी चीज़ नहीं, किन्तु उस समय उसकी आवश्यकता नहीं । समयपर ही सब कार्य अच्छे लगते हैं ।"

युवती : "बस, आपके कथनानुसार फ़ैसला हो गया । कविता करना बुरा नहीं, किन्तु इस समय उसकी आवश्यकता नहीं ।"

पृथ्वी० : "इसका तात्पर्य ?"

युवती : "यही कि आप क्षत्रिय हैं । भारत-माताको इस समय वीर-पुत्रोंकी आवश्यकता है । आप भी सोच लें, यदि आज वीर राजपूत समस्यापूर्त्तिमें लगे रहें, तो फिर देशकी समस्याको कौन हल करेगा ?"

पृथ्वी० : "तो तुम क्या चाहती हो ?"

युवती : "यही कि देशसेवाके व्रतमें केसरिया बाना पहनकर शत्रुओं-का संहार करो। आज इनके अत्याचारोंसे भारत-माता रुदन कर रही है, स्त्री-बच्चोंकी गरदनोंपर निर्दयतापूर्वक छुरी चलायी जा रही है, वीर लल-नाओंका बलपूर्वक शील नष्ट किया जा रहा है। अतएव इस समय कविता करना योग्य नहीं। प्रतापका साथ दो, प्राणनाथ, प्रताप-जैसे बनो!"

कहते-कहते युवतीका गला रुँध गया। वह अब अपनेको अधिक न सम्भाल सकी। लज्जा, घृणा, मानसिक सन्ताप आदिने उसे बोलनेमें अस-मर्थ कर दिया। वह अपने पतिके पाँवोंमें पड़कर फूट-फूटकर रोने लगी। युवतीके रुदनमें कुछ बेबसीका ऐसा अंश था कि पृथ्वीराजका कठोर हृदय भी पिघल गया और वह उत्सुकतासे उसके दुःखका कारण पूछने लगे।

× × ×

जिस समय बादशाह अकबरके हाथोंमें भारतवर्षके शासनकी बागडोर थी, उस सयय वीर-चूड़ामणि प्रतापको छोड़कर प्रायः सभी राजे अपनी स्वाधीनता खोकर, पूर्वजोंकी मान-मर्यादाको तिलांजलि देकर दासत्ववृत्ति स्वीकार कर चुके थे। जोधपुरका राजा उदयसिंह अपनी बहन जोधाबाईका और आमेरके राजा मानसिंह अपनी बहनका सम्बन्ध बादशाहसे करके राजपूत-जैसे उज्ज्वल कुलमें कलंक लगा चुके थे। महाराणा प्रतापके छोटे भाई शक्तसिंह भी घरेलू झगड़ोंके कारण अकबरसे जा मिले थे। इन्हीं शिशोदिया-वीर शक्तसिंहकी कन्या बीकानेरके राज-कुमार पृथ्वीसिंहको ब्याही थी। शक्तसिंह यद्यपि इस समय "घरका भेदी लंका ढावे" इस कहावतके निशाने बन रहे थे, किन्तु उनकी कन्याके हृदयमें मातृभूमिके प्रेमका अंकुर फूट निकला था। वह क्षत्राणी थी, उसे अपने कुलकी मान-मर्यादाका पूरा ध्यान था। उसके कुलकी असंख्य वीरांगनाएँ जीते-जी आगमें कूदकर मरी हैं, रण-क्षेत्रमें शत्रुओंका रक्त

बहाकर राजपूती शान दिखा गयी हैं, इत्यादि बातोंका उसे पूरा ज्ञान था। वह भी अपने पतिके साथ आगरेमें रहती थी। अकबर अपनी कामवासनाएँ तृप्त करनेके लिए अनेक यत्न करता रहता था। अपनी विलासिताके लिए वह आगरेके क़िलेमें महीनेमें एक बार मीनाबाज़ार लगवाता था। उसमें केवल स्त्रियोंके जानेकी आज्ञा थी। व्यापारियोंकी स्त्रियाँ अनेक देशोंके शिल्पजात पदार्थ लाकर उस मेलेमें कारबार किया करती थीं। और राज-परिवारोंकी स्त्रियाँ वहाँ जाकर मनमानी सामग्री मोल लिया करती थीं। पाखण्डी अकबर भी भेष बदले हुए वहाँ जाता था और किसी-न-किसी सुन्दर युवतीको अपने षड्यन्त्रमें फाँस लिया करता था। एक समय पृथ्वीराजकी पत्नी किरन भी उक्त मीनाबाज़ारकी सैर करने गयी। अकबरने इसे धोखेसे भुलावा देकर महलोंमें बुला लिया। किरन अकबरके पैशाचिक भावको ताड़ गयी, लपककर उखेड़में बैठ बादशाहको दे मारा और कमरसे एक छुरा निकाल बादशाहकी छातीपर बैठ सिंहनीकी तरह गरजकर बोली, "ईश्वरके नामसे शपथ करके कह कि और किसी अबलाके शील नष्ट करनेकी इच्छा नहीं करूँगा। कह, शपथ कर, नहीं तो यह तीक्ष्ण छुरी अभी तेरे हृदयके रुधिरसे स्नान करेगी।" कायर अकबर प्राणोंकी भिक्षा माँगने लगा, उसने तत्काल वीर-बालाकी आज्ञाका पालन किया। वीर-नारी किरनने भी अकबरको जीवन-दान दिया।

इसी घटनासे घायल सिंहनीकी तरह जब किरन अपने मकानपर आयी, तब वहाँ पृथ्वीराजको कविता करते देख वीर-बालाका क्रोधरूपी समुद्र उमड़ आया और उसी आवेशमें अपने पतिको उसके क्षत्रियोचित कर्त्तव्यका ज्ञान करानेके लिए भर्त्सना की। शिशोदिया राज-कन्याओंने हमेशा धर्मके लिए जान दी है। उन्होंने कभी अपने उज्ज्वल कुलमें कलंक नहीं लगने दिया। यही कारण है कि उस समय जिसको शिशोदिया राज-कुमारी ब्याही जाती थी, वह मारे गर्वके फूल उठता था, लोग उसके भाग्यकी

सराहना करते थे। चित्तौड़की राजकुमारी पटरानी रहेगी, उसीकी सन्तान राज्यकी उत्तराधिकारिणी होगी, इन्हीं शर्तोंपर वे ब्याही जाती थीं। इसी वीर-बाला किरनने महाराणा प्रतापका सन्धि-पत्र जो अकबरके पास आया था, उसके उत्तरमें अपने पति पृथ्वीराजसे वीरोचित शब्दोंमें एक पत्र लिखवाया था, जिसे पढ़कर महाराणा प्रताप फिर अपने खोये हुए धैर्यको प्राप्त कर सके थे।

वीर-सन्देश, आगरा; १९२८ ई०

आशाशाहकी वीर-माता

आशाशाहकी वीर-माताका नाम ऐतिहासिक विद्वानोंको ज्ञात नहीं। वह क़ीमती मोतीकी भाँति अन्तस्थलमें छिपा हुआ है, फिर भी उसकी प्रखर आभा संसारको बलात् अपनी ओर आकर्षित कर रही है। अपने जीवनमें उसने क्या-क्या लोकोपयोगी और वीरोचित कार्य किये, उसका निर्मल चरित्र और कोमल स्वभाव कितना बढ़ा-चढ़ा था, वह सब कुछ अन्धकारमें विलीन हो गया है। तो भी उसके जीवनका केवल एक कार्य ही ऐसा है जो हमारी आँखें खोलता है और उसकी मनोवृत्तिपर काफ़ी प्रकाश डालता है। पूर्व युगमें सर्व-साधारणके विषयमें कुछ लिखा जाये, ऐसी भारतमें प्रथा ही नहीं थी। केवल राजे-महाराजाओंके गीत गाये जाते थे। यही कारण है कि हम वीर-माताके लोकोत्तर कार्योंसे अनभिज्ञ हैं।

इस देवीने हिन्दू-कुल-तिलक महाराणा प्रतापके पिता उदयसिंहकी—जब कि वह निरा बालक था—प्राण-रक्षा की थी। उस निराश्रयको अपने कुटुम्बका मोह छोड़कर आश्रय दिया था। यही कारण है कि राणा उदयसिंहके सम्बन्धमें लिखते हुए टॉड् साहबको अपने 'राजस्थान' में प्रसंगवश इस देवीका उल्लेख भी दो लाइनोंमें करना पड़ा है।

चित्तौड़के राज्यासनपर बैठते ही दासी-पुत्र बनवीर[1]का हृदय बदल गया। उसे बे-पिये ही दो बोतलका नशा रहने लगा। स्वार्थपरता कृतज्ञताको धर दबाती है; लोभ दयाको स्थिर नहीं रहने देता। जो बनवीर विक्रमाजितको गद्दीसे उतारकर राज्य-प्राप्त करना घोर पाप समझता

---

१. यह बनवीर दासी-पुत्र था और उदयसिंहका रिश्तेमें चाचा लगता था। राणा संग्रामसिंहके स्वर्गासीन होनेपर उसके पुत्र क्रमशः रत्नसिंह और विक्रमाजित मेवाड़के अधीश्वर हुए, किन्तु विक्रमाजित अयोग्य था, इसलिए मेवाड़हितैषी सरदारोंने विक्रमाजितको हटाकर बालक उदयसिंहके बालिग़ होने तक बनवीरको चित्तौड़के राज्यासनपर अभिषिक्त कर दिया था।

था, वही बनवीर राज्यासनपर बैठते ही सदा निष्कण्टक राज्य करते रहने-की कूटनीति सोचने लगा। वह राज्यके यथार्थ उत्तराधिकारी बालक उदय-सिंहको अपने पथमें काँटा समझकर उसे मिटा देनेके लिए क्रूर रात्रिकी बाट जोहने लगा। धीरे-धीरे रात्रि हो गयी। कुमार उदयसिंहने भोजनादि करके शयन किया। उनकी धाय बिस्तरेपर बैठ सेवा करने लगी। कुछ विलम्बके पीछे रणवासमें घोर आर्त्तनाद और रोनेका शब्द सुनायी आने लगा। इस शब्दको सुनकर पन्ना धाय विस्मित हुई। वह डरसे उठना ही चाहती थी, कि इतनेमें ही बारी (नाई) राजकुमारकी जूठन आदि उठाने-को वहाँ आया और भय-विह्वल भावसे कहने लगा, "बहुत बुरा हुआ, सत्यानाश हो गया, बनवीरने राणा विक्रमाजितको मार डाला।" धायका हृदय काँप गया, वह समझ गयी कि निष्ठुर हृदय बनवीर केवल विक्रमा-जितको ही मारकर चुप न होगा, वरन् उदयसिंहके मारनेको भी आवेगा। उसने तत्काल बालक उदयसिंहको, जिसकी अवस्था उस समय पन्द्रह वर्षकी थी, किसी युक्तिसे बाहर निकाल दिया और उसके पलंगपर उसी अवस्था-के अपने पुत्रको सुला दिया। इतनेमें ही रक्त-लोलुपी पिशाच-हृदय बनवीर आ पहुँचा और बालक उदयसिंहको खोजने लगा। तब पन्ना धायनें इस रक्त-लोलुपको अपने पुत्रकी ओर संकेत कर दिया, उस चाण्डालने उसीको राजकुमार समझ उसके कोमल हृदयमें खंजर भोंक दिया। बालक सदैवको सो गया। पन्ना धायने अपने स्वामीके हितार्थ अपने बालकका बलिदान करके उफ़ तक न की। अपने पुत्रके मारे जाने-पर पन्ना धाय महलोंसे निकलकर उदयसिंहके पास जा पहुँची। आगे टॉड् साहब लिखते हैं कि कुमारको साथ लेकर पन्ना धायने वीर बाघजीके पुत्र सिंहरावके पास जाकर रहनेकी प्रार्थना की, बनवीरके भयसे उसने राजकुमारकी रक्षा करना स्वीकार नहीं किया और अत्यन्त शोकयुक्त होकर बोला, "मैं तो बहुतेरा चाहता हूँ कि राजकुमारकी रक्षा करूँ, परन्तु बनवीर इस बातको जानकर वंशसहित मेरा संहार कर डालेगा। मुझमें

इतनी सामर्थ्य नहीं कि उसका सामना करूँ।" इसके उपरान्त पन्ना देवलको छोड़कर डुंगरपुर नामक स्थानमें गयी और वहाँके रावल ऐशकर्ण (यशकर्ण) के पास राजकुमारको रखना चाहा, परन्तु उसने भी भयके मारे राजकुमारको नहीं रखा। तदुपरान्त विश्वासी और हितकारी भीलोंके द्वारा रक्षित हो आरावलीके दुर्गम पहाड़ और ईडरके कूट मार्गोंको लाँघकर, कुमारको साथ लिये हुए पन्ना कुंभलमेरु-दुर्गमें पहुँची। यहाँपर पन्नाकी बुद्धिमानीसे काम हो गया। देपुरा गोत्र-कुलमें उत्पन्न हुआ आशाशाह देपुरा नामक एक जैन उस समय कुंभलमेरुमें क़िलेदार था। पन्नाने उससे मिलना चाहा। आशाशाहने प्रार्थना स्वीकार करके विश्राम-गृहमें पन्नाको बुलाया। वहाँ पहुँचते ही धात्रीने बालक उदयसिंहको आशाशाहकी गोदमें बिठाकर कहा, "अपने राजाके प्राण बचाइए", परन्तु आशाशाहने अप्रसन्न और भीत होकर कुमारको गोदसे उतारना चाहा। आशाकी माता भी वहींपर थी। पुत्रकी ऐसी कायरता देखकर उसको फटकारते हुए उपदेशपूर्ण शब्दोंमें बोली,[1]

"आशा, क्या तू मेरा पुत्र नहीं है? क्या मैंने तुझे व्यर्थमें पाल-पोसकर इतना बड़ा किया है? धिक्कार है तेरे जीवनको! क्या ही अच्छा होता जो तू मेरे उदरसे जन्म ही न लेता, तेरे भारसे पृथ्वी बोझों मरती है। जो मनुष्य विपत्तिमें किसीके काम नहीं आता, निरपराधियों और बेकसोंको अत्याचारियोंके चंगुलसे सामर्थ्य रहते हुए भी नहीं बचा सकता, निराश्रयोंको आश्रय नहीं दे सकता, ऐसे अधमको संसारमें जीनेका अधिकार नहीं। आ, जिन हाथोंसे लोरियाँ गा-गाकर तुझे इतना बड़ा किया, आज उन्हीं हाथोंसे तेरा जीवन समाप्त कर दूँ।"

इतना कहकर वह भूखी शेरनीकी भाँति, आशाशाहपर झपट पड़ी और चाहती थी कि ऐसे नराधम, भीरु, कायर और अधर्मी पुत्रका गला घोट

---

१. टाड्, राजस्थान : द्वि० खं०, अ० ९, पृ० २४५-४६।

दे, कि आशाशाह अपनी वीर-माताके पाँवोंमें गिर पड़ा। उसकी भीरुता हिरन हो गयी। वह घुटने टेक अश्रुबिन्दुओंसे अपनी वीर-माताके चरण-कमलोंका अभिषेक करने लगा। वह मातृ-भक्त गद्-गद कण्ठसे बोला, "माँ, तुम्हारा पुत्र होकर भी मैं यह भीरुता कर सकता था? क्या सिंहिनी-पुत्र शृगालके भयसे अपने धर्मसे विमुख हो सकता है? क्या प्राणोंके तुच्छ मोहमें पड़कर मैं शरणागतकी रक्षा न करके अपने धर्मसे विमुख हो सकता था? मेरी अच्छी अम्मा, क्या वास्तवमें तुम्हें यह भ्रम हो गया था?"

आशाशाहके वीरोचित शब्द सुनकर वीर-माताका हृदय उमड़ आया, वह उसके सिरपर प्यारसे हाथ फेरने लगी। आशाशाह माताका यह व्यवहार देखकर मुसकराकर बोला, "माँ यह क्या? कहाँ तो तुम मेरा जीवन समाप्त कर देना चाहती थीं और कहाँ........"

वीर-माता बात काटकर बोली, "बेटा, क्षत्राणियोंका अद्भुत स्वभाव होता है। वह कर्त्तव्य-विमुख पुत्र या पतिका मुँह देखना नहीं चाहतीं, किन्तु कर्त्तव्य-परायणकी वह बलाएँ लेती हैं, उनके लिए मिट जाती हैं।"

वीर आशाशाहने कुमार उदयसिंहको अपना भतीजा कहके प्रसिद्ध किया और उदयसिंहके युवा होनेपर आशाशाहने अन्य सामन्तोंकी सहायता-से चित्तौड़का सिंहासन उसे दिला दिया। जब कि मेवाड़के बड़े-बड़े सामन्त, राज्यसे बड़ी-बड़ी जागीर पानेवाले चित्तौड़के यथार्थ उत्तराधिकारी कुमार उदयसिंहको शरण न दे सके, तब एक जैन-कुलोत्पन्न महिलाने जो कार्य किया वह अवश्य ही सराहने योग्य है। आज भी इस सभ्यताके युगमें जब कि हर प्रकारकी शिकायतोंके लिए न्यायालय खुले हुए हैं, राजद्रोही-को शरण देनेवाला दण्डनीय होता है, तब उस ज़मानेमें जब कि राजा ही सर्वे-सर्वा होता था, वह बिना किसी अदालतके अपनी इच्छानुसार मनुष्यों-के प्राण-हरण कर सकता था, तब ऐसे संकटके समय भी उस महिलारत्नने जो कार्य कर दिखाया वह अभिनन्दनीय है।

नवम्बर १९३२ ई०

भामाशाह

स्वाधीनताकी क्रीड़ास्थली वीरप्रसवा मेवाड़भूमिके इतिहासमें राणा-प्रतापके साथ भामाशाहका नाम सदैव अमर रहेगा। इतिहास-प्रसिद्ध हल्दीघाटीके युद्धमें वीर भामाशाह और उसका भाई ताराचन्द भी लड़ा था[1]। इक्कीस हज़ार राजपूतोंने असंख्य यवन सेनाके साथ युद्ध करके स्वतन्त्रताकी वेदीपर अपने प्राणोंकी आहुति दे दी, किन्तु दुर्भाग्य कि वे मेवाड़को यवनों-द्वारा पददलित होनेसे न बचा सके। समस्त मेवाड़पर यवनोंका आतंक छा गया। युद्ध-परित्याग करनेपर राणा प्रताप मेवाड़का पुनरुद्धार करनेकी प्रबल आकांक्षाको लिये हुए वीरान जंगलोंमें भटकते फिरते थे। उनके ऐशो-आराममें पलने योग्य बच्चे, भोजनके लिए उनके चारों तरफ़ रोते रहते थे। उनके रहनेके लिए कोई सुरक्षित स्थान न था। अत्याचारी मुग़लोंके आक्रमणोंके कारण बना-बनाया भोजन कई बार राणाजीको छोड़ना पड़ा था। इतनेपर भी आनपर मिटनेवाले समर-केसरी प्रताप विचलित नहीं हुए। वह अपने पुत्रों और सम्बन्धियोंको प्रसन्नतापूर्वक रणक्षेत्रमें अपने साथ रहते हुए देखकर यही कहा करते थे कि राजपूतोंका

१. हल्दीघाटीका यह विख्यात युद्ध १८ जून १९७६ ईस्वीको एक घड़ी दिन चढ़े आरम्भ हुआ था और उसी दिन सायंकाल तक समाप्त हो गया था। (चाँद, वर्ष ११, संख्या १२२, पृष्ठ ११८) और अब हर्ष है कि कुछ वर्षोंसे ज्येष्ठ शुक्ला ७को इस स्वतन्त्रता बलिदान-दिवसको पवित्र स्मृतिमें कुछ कर्मवीरोंने वहाँ मेलेका आयोजन करके किसी कविके निम्नलिखित उद्‌गारोंकी पूर्ति की है :

शहीदों के मज़ारों पर जुड़ेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरनेवालों का यही बाक़ी निशां होगा॥

जन्म ही इसलिए होता है, परन्तु उस पर्वत-जैसे स्थिर मनुष्योंको भी आपत्तियोंके प्रलयंकारी झोकोंने विचलित कर दिया। एक दफ़ा जंगली अन्नके आटेकी रोटियाँ बनायी गयीं और प्रत्येकके भागमें एक-एक रोटी—आधी सुबह और आधी शामके लिए—आयी। राणा प्रताप राजनीतिक पेचीदा उलझनोंके सुलझानेमें व्यस्त थे, वे मातृभूमिकी परतन्त्रतासे दुखी होकर गरम निःश्वास छोड़ रहे थे कि इतनेमें लड़कीके हृदयभेदी चीत्कारने उन्हें चौंका दिया। बात यह हुई कि जंगली बिल्ली छोटी लड़कीके हाथसे रोटीको छीनकर ले गयी, जिससे वह मारे भूखके चिल्लाने लगी। ऐसी-ऐसी अनेक आपत्तियोंसे घिरे हुए, शत्रुके प्रवाहको रोकनेमें असमर्थ होनेके कारण, वीर चूड़ामणि प्रताप मेवाड़ छोड़नेको जब उद्यत हुए, तब भामाशाह राणाजीके स्वदेश-निर्वासनके विचारको सुनकर रो उठा।

हल्दीघाटीके युद्धके बाद भामाशाह कुंभलमेरुकी प्रजाको लेकर मालवेमें रामपुरेकी ओर चला गया था। वहाँ भामाशाह और उसके भाई ताराचन्दने मालवेपर चढ़ाई करके पच्चीस लाख रुपये तथा बीस हजार अशर्फ़ियाँ दण्ड-स्वरूप वसूल की, इस संकटावस्थामें उस वीरने देशभक्तिसे तथा स्वामिभक्तिसे प्रेरित होकर, कर्नल जेम्स टॉडके कथनानुसार, राणा प्रतापको जो धन भेंट किया था, वह इतना था कि पच्चीस हज़ार सैनिकोंका बारह वर्ष तक निर्वाह हो सकता था। इस महान् उपकार करनेके कारण महात्मा भामाशाह मेवाड़के उद्धारकर्त्ता कहलाये[1]। भामाशाहके इस अपूर्व त्यागके सम्बन्धमें भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजीने लिखा है—

जा धन के हित नारि तजै पति,
पूत तजै पितु शीलहिं खोई।
भाई सों भाई लरै रिपु से पुनि,
मित्रता मित्र तजै दुख जोई।

---

१. देखो टाड् राजस्थान : जि० १, पृ० २४९।

ता धन को बनिया ह्वै गिन्यो न,
दियो दुख देश के आरत होई।
स्वारथ अर्प्य तुम्हारोई है,
तुमरे सम और न या जग कोई॥

देशभक्त भामाशाहका यह कैसा अपूर्व स्वार्थ-त्याग है? जिस धनके लिए कैकेयीने रामको चौदह वर्षके लिए वनवास भेजा, जिस धनके लिए पाण्डव और कौरवोंने अठारह अक्षौहिणी सेना कटवा डाली, जिस धनके लिए बनवीरने बालक उदयसिंहकी हत्या करनेकी असफल चेष्टा की, जिस धनके लिए मारवाड़के कई राजाओंने अपने पिता और भाइयोंका संहार किया, जिस धनके लिए लोगोंने मान बेचा, धर्म बेचा, कुल-गौरव बेचा, साथ ही देशकी स्वतन्त्रता बेची; वही धन भामाशाहने देशोद्धारके लिए प्रतापको अर्पण कर दिया। भामाशाहका यह अनोखा त्याग धनलोलुपी मनुष्योंकी बलात् आँखें खोलकर उन्हें देशभक्तिका पाठ पढ़ाता है।

भारमलके[1] स्वर्गवास होनेपर राणा प्रतापने भामाशाहको अपना मन्त्री नियत किया था, हल्दीघाटीके युद्धके बाद जब भामाशाह मालवेकी ओर चला गया था, तब उसकी अनुपस्थितिमें रामा सहाणी महाराणाके प्रधानका कार्य करने लगा था। भामाशाहके आनेपर रामासे प्रधानका कार्य-भार लेकर पुनः भामाशाहको सौंप दिया गया। उसी समय किसी कविका कहा गया प्राचीन पद्य इस प्रकार है,

भामो परधानो करे रामो कीधो रद्द।[2]

भामाशाहके दिये हुए रुपयोंका सहारा पाकर राणा प्रतापने फिर बिखरी हुई शक्तिको बटोरकर रण-भेरी बजा दी, जिसे सुनते ही शत्रुओं-के हृदय दहल गये। कायरोंके प्राण-पखेरू उड़ गये, अकबरके होश-हवास

---

१. भामाशाहका पिता।
२. राजपूतानेका इतिहास : ती० खं०, पृ० ७४३।

जाते रहे। राणाजी और वीर भामाशाह अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर जगह-जगह आक्रमण करते हुए यवनों-द्वारा विजित मेवाड़को पुनः अपने अधिकारमें करने लगे, पं० झावरमल्लजी शर्मा सम्पादक दैनिक हिन्दू संसारने लिखा है, "इन धावोंमें भी भामाशाहकी वीरताके हाथ देखनेका महाराणाको खूब अवसर मिला और उससे वे बड़े प्रसन्न हुए[1]।"

"....इसी प्रकार महाराणा अपने प्रवल पराक्रान्त वीरोंकी सहायतासे बराबर आक्रमण करते रहे और संवत् १६४३ तक चित्तौड़ और माण्डलगढ़को छोड़कर समस्त मेवाड़पर फिरसे उनका अधिकार हो गया। इस विजयमें महाराणाकी साहस-प्रधान वीरताके साथ भामाशाहकी उदार सहायता और राजपूत सैनिकोंका आत्म-बलिदान ही मुख्य कारण था। आज भामाशाह नहीं हैं, किन्तु उनकी उदारताका बखान सर्वत्र बड़े गौरवके साथ किया जाता है।"

"प्रायः साढ़े तीन-सौ वर्ष होनेको आये, भामाशाहके वंशज आज भी भामाशाहके नामपर सम्मान पा रहे हैं। मेवाड़-राजधानी उदयपुरमें भामाशाहके वंशजको पंच-पंचायत और अन्य विशेष उपलक्ष्योंमें सर्वप्रथम गौरव दिया जाता है। समयके उलट-फेर अथवा कालचक्रकी महिमासे भामाशाहके वंशज आज मेवाड़के दीवानपदपर नहीं हैं और न धनका बल ही उनके पास रह गया है। इसलिए धनकी पूजाके इस दुर्घट समयमें उनकी प्रधानता, उनकी धन-शक्तिसम्पन्न जाति-बिरादरीके अन्य लोगोंको अखरती है, किन्तु उनके पुण्यश्लोक पूर्वज भामाशाहके नामका गौरव ही ढाल बनकर उनकी रक्षा कर रहा है। भामाशाहके वंशजोंकी परम्परागत प्रतिष्ठाकी रक्षाके लिए संवत् १९१२ में तत्कालीन उदय-

---

१. श्री ओझाजीने भी लिखा है—महाराणा भामाशाहकी बड़ी ख़ातिर करता था और वह दिवेरके शाही थानेपर हमला करनेके समय भी राजपूतोंके साथ था। राजपूतानेका इतिहास : पृ० ७४३।

पुराधीश महाराणा सरूपसिंहको एक आज्ञापत्र निकालना पड़ा था, जिसकी नक़ल ज्योंकी-त्यों इस प्रकार है,

"श्री रामोजयति

श्रीगनेशजीप्रसादात् श्रीएकलिंगजी प्रसादत्

भालेका निशान

(सही)

स्वस्तिश्री उदयपुर सुभसुथाने महाराजाधिराज महाराणाजी श्री सरूप-सिंघजी आदेशात् कावड्या जेचन्द कुनणो वीरचन्दकस्य अप्रं थारा वड़ा वासा भामो कावड्यो ई राजम्हे साम ध्रमासु काम चाकरी करी जी की मरजाद ठेठसू य्या है म्हाजना की जातम्हे बावनी त्था चौका को जीमण वा सीगपूजा होवे जीम्हे पहेली तलक थारे होतो हो सो अगला नगर सेठ वेणी-दास करसो कर्यो अर बेदर्याफत तलक थारे न्हीं करवा दीदो अबारू थारी सालसी दीखी सो नगे कर सेठ पेमचन्दने हुकम की दो सो वी भी अरज करी अर न्यात म्हे हकसर मालम हुई सो अब तलक माफक दसतुरके थे थारो कराय्या जाजो आगासु थारा वंस को होवेगा जी के तलक हुवा जावेगा पंचाने वी हुकम करदीय्यो है सो पेलीतलक थारे होवेगा। प्रवानगी म्हेता सेरसीघ संवत् १९१२ जेठसुद १५ बुधे।"[1]

इसका अभिप्राय यह है, "भामाशाहके मुख्य वंशधरकी यह प्रतिष्ठा चली आती रही, कि जब महाजनोंमें समस्त जाति-समुदायका भोजन आदि होता, तब सबसे प्रथम उसके तिलक किया जाता था, परन्तु पीछेसे महाजनोंने उसके वंशवालोंके तिलक करना बन्द कर दिया, तब महाराणा स्वरूपसिंहने उसके कुलकी अच्छी सेवाका स्मरण कर इस विषयकी जाँच करायी और आज्ञा दी कि महाजनोंकी जातिमें बावनी (सारी जातिका)

---

1. हिन्दू-संसार : दीपावली अंक, कार्तिक कृ० ३०, सं० १९८२ वि०।

भोजन) तथा चौकेका भोजन व सिंहपूजामें पहलेके अनुसार तिलक भामाशाहके मुख्य वंशधरके ही किया जाये। इस विषयका परवाना वि० सं० १९१२ ज्येष्ठ सुदी १५ को जयचन्द कुनणा वीरचन्द कावड़ियाके नाम कर दिया, तबसे भामाशाहके मुख्य वंशधरके तिलक होने लगा।"

"फिर महाजनोंने महाराणाकी उक्त आज्ञाका पालन न किया, जिससे महाराणा फतहसिंहके समय वि० सं० १९५२ कार्तिक सुदी १२ को मुक़दमा होकर उसके तिलक किये जानेकी आज्ञा दी गयी।"[1]

वीर भामाशाह, तुम धन्य हो ! ! आज प्रायः साढ़े तीन-सौ वर्षसे तुम इस संसारमें नहीं हो, परन्तु, यहाँके बच्चे-बच्चेकी ज़बानपर तुम्हारे पवित्र नामकी छाप लगी हुई है[2]। जिस देशके लिए तुमने इतना बड़ा

---

१. राजपूतानेका इतिहास : पृ० ७८७-८८।

२. मेवाड़का अमूल्य और अप्राप्य ऐतिहासिक ग्रन्थरत्न 'वीरविनोद' में, जिसको कि मुझे सौभाग्यसे मान्य ओझाजीके यहाँ देखनेका ज़रा-सा अवसर मिल गया था, पृ० २५१ पर लिखा है कि,

"भामाशाह बड़ी जुरअतका आदमी था। यह महाराणा प्रतापसिंहके शुरू समयसे महाराणा अमरसिंहके राज्यके ढाई-तीन वर्ष तक प्रधान रहा। इसने ऊपर लिखी हुई बड़ी-बड़ी लड़ाइयोंमें हज़ारों आदमियोंका खर्च चलाया। यह नामी प्रधान संवत् १६५६ माघ शुक्ल ११ (हि० १००९। सा० ९ रजब ई० १६०० ता० २७ जनवरी)को इक्यावन वर्ष और सात महीनेकी उमरमें परलोकको सिधारा। इसका जन्म संवत् १६०४ आषाढ़ शुक्ल १० (हि० ९५४ ता० ९ जमादियुल अव्वल ई० १५४७ ता० २८ जून) सोमवारको हुआ था। इसने मरनेके एक दिन पहले अपनी स्त्रीको एक बही अपने हाथकी लिखी हुई दी और कहा कि इसमें मेवाड़के ख़ज़ानेका कुल हाल लिखा हुआ है। जिस वक़्त तकलीफ़ हो, यह बही उन महाराणाकी नज़र करना। यह ख़ैरख़्वाह प्रधान इस बहीके लिखे कुल ख़ज़ानेसे

पुराधीश महाराणा सरूपसिंहको एक आज्ञापत्र निकालना पड़ा था, जिसकी नक़ल ज्योंकी-त्यों इस प्रकार है,

"श्री रामोजयति

श्रीगनेशजीप्रसादात् श्रीएकलिंगजी प्रसादत्

भालेका निशान

(सही)

स्वस्तिश्री उदयपुर सुभसुथाने महाराजाधिराज महाराणाजी श्री सरूपसिंघजी आदेशात् कावड़्या जेचन्द कुनणो वीरचन्दकस्य अप्रं थारा बड़ा वासा भामो कावड़्यो ई राजम्हे साम ध्रमासु काम चाकरी करी जी की मरजाद ठेठसू य्या है म्हाजना की जातम्हे बावनी त्था चौका को जीमण वा सीगपूजा होवे जीम्हे पहेली तलक थारे होतो हो सो अगला नगर सेठ वेणीदास करसो कर्यो अर बेदर्याफत तलक थारे न्हीं करवा दीदो अबारू थारीसालसी दीखी सो नगे कर सेठ पेमचन्दने हुकम की दो सो वी भी अरज करी अर न्यात म्हे हकसर मालम हुई सो अब तलक माफक दसतुरके थे थारो कराय्या ज़ाजो आगासु थारा वंस को हवेगा जी के तलक हुवा जावेगा पंचाने वी हुकम करदीय्यो है सो पेलीतलक थारे होवेगा। प्रवानगी म्हेता सेरसीघ संवत् १९१२ जेठसुद १५ बुधे।"[1]

इसका अभिप्राय यह है, "भामाशाहके मुख्य वंशधरकी यह प्रतिष्ठा चली आती रही, कि जब महाजनोंमें समस्त जाति-समुदायका भोजन आदि होता, तब सबसे प्रथम उसके तिलक किया जाता था, परन्तु पीछेसे महाजनोंने उसके वंशवालोंके तिलक करना बन्द कर दिया, तब महाराणा स्वरूपसिंहने उसके कुलकी अच्छी सेवाका स्मरण कर इस विषयकी जाँच करायी और आज्ञा दी कि महाजनोंकी जातिमें बावनी (सारी जातिका)

---

१. हिन्दू-संसार : दीपावली अंक, कार्तिक कृ० ३०, सं० १९८२ वि०।

भोजन) तथा चौकेका भोजन व सिंहपूजामें पहलेके अनुसार तिलक भामाशाहके मुख्य वंशधरके ही किया जाये। इस विषयका परवाना वि० सं० १९१२ ज्येष्ठ सुदी १५ को जयचन्द कुनणा वीरचन्द कावड़ियाके नाम कर दिया, तबसे भामाशाहके मुख्य वंशधरके तिलक होने लगा।"

"फिर महाजनोंने महाराणाकी उक्त आज्ञाका पालन न किया, जिससे महाराणा फतहसिंहके समय वि० सं० १९५२ कार्तिक सुदी १२ को मुक़दमा होकर उसके तिलक किये जानेकी आज्ञा दी गयी।"[1]

वीर भामाशाह, तुम धन्य हो ! ! आज प्रायः साढ़े तीन-सौ वर्षसे तुम इस संसारमें नहीं हो, परन्तु, यहाँके बच्चे-बच्चेकी ज़बानपर तुम्हारे पवित्र नामकी छाप लगी हुई है[2]। जिस देशके लिए तुमने इतना बड़ा

---

१. राजपूतानेका इतिहास : पृ० ७८७-८८।

२. मेवाड़का अमूल्य और अप्राप्य ऐतिहासिक ग्रन्थरत्न 'वीरविनोद' में, जिसको कि मुझे सौभाग्यसे मान्य ओझाजीके यहाँ देखनेका ज़रा-सा अवसर मिल गया था, पृ० २५१ पर लिखा है कि,

"भामाशाह बड़ी जुरअतका आदमी था। यह महाराणा प्रतापसिंहके शुरू समयसे महाराणा अमरसिंहके राज्यके ढाई-तीन वर्ष तक प्रधान रहा। इसने ऊपर लिखी हुई बड़ी-बड़ी लड़ाइयोंमें हज़ारों आदमियोंका खर्च चलाया। यह नामी प्रधान संवत् १६५६ माघ शुक्ल ११ (हि० १००९। सा० ९ रजब ई० १६०० ता० २७ जनवरी)को इक्यावन वर्ष और सात महीनेकी उमरमें परलोकको सिधारा। इसका जन्म संवत् १६०४ आषाढ़ शुक्ल १० (हि० ९५४ ता० ९ जमादियुल अव्वल ई० १५४७ ता० २८ जून) सोमवारको हुआ था। इसने मरनेके एक दिन पहले अपनी स्त्रीको एक बही अपने हाथकी लिखी हुई दी और कहा कि इसमें मेवाड़के ख़ज़ानेका कुल हाल लिखा हुआ है। जिस वक्त तकलीफ़ हो, यह बही उन महाराणाकी नज़र करना। यह ख़ैरख़्वाह प्रधान इस बहीके लिखे कुल ख़ज़ानेसे

आत्म-त्याग किया था, वह मेवाड़ पुनः अपनी स्वाधीनता प्रायः खो बैठा है, परन्तु फिर भी वहाँ तुम्हारा गुण-गान होता रहता है। तुमने अपनी अक्षयकीर्त्तिसे स्वयंको ही नहीं, किन्तु समस्त जैन-जातिका मस्तक ऊँचा कर दिया हैं। निःसन्देह वह दिन धन्य होगा, जिस दिन भारतवर्षकी स्व-तन्त्रताके लिए जैन-समाजके धन-कुबेरोंमें भामाशाह-जैसे सद्भावोंका उदय होगा।

× × ×

जिस नररत्नका ऊपर उल्लेख किया गया है, उसके चरित्र, दान आदिके सम्बन्धमें ऐतिहासिकोंकी चिरकालसे यही धारणा रही है, किन्तु हालमें रायबहादुर महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझाने अपने राजपूतानेके इतिहास तीसरे खण्डमें 'महाराणा प्रतापकी सम्पत्ति' शीर्षकके नीचे महाराणाके निराश होकर मेवाड़ छोड़ने और भामाशाहके रुपये देनेपर फिर लड़ाईके लिए तैयारी करनेकी प्रसिद्ध घटनाको असत्य ठहराया हैं।

इस विषयमें आपकी युक्तिका सार 'त्यागभूमि' के शब्दोंमें इस प्रकार है,

"महाराणा कुम्भा और साँगा आदि-द्वारा उपार्जित अतुल सम्पत्ति अभीतक मौजूद थी, बादशाह अकबर इसे अभीतक न ले पाया था। यदि यह सम्पत्ति न होती तो जहाँगीरसे सन्धि होनेके बाद महाराणा अमर-सिंह उसे इतने अमूल्य रत्न कैसे देता? आगे आनेवाले महाराणा जगत-सिंह तथा राजसिंह अनेक महादान किस तरह देते और राजसमुद्रादि अनेक

महाराणा अमरसिंहका कई वर्षों तक ख़र्च चलाता रहा। मरनेपर इसके बेटे जीवशाहको महाराणा अमरसिंहने प्रधान पद दिया था। वह भी ख़ैरख़्वाह आदमी था। लेकिन भामाशाहकी सानीका होना कठिन था।"

बृहत् व्ययसाध्य कार्य किस तरह सम्पन्न होते ? इसलिए उस समय भामाशाहने अपनी तरफ़से न देकर भिन्न-भिन्न सुरक्षित राजकोषोंसे रुपया लाकर दिया।"

इसपर 'त्यागभूमि' के विद्वान् समालोचक श्री हंसजीने लिखा है,

"निःसन्देह इस युक्तिका उत्तर देना कठिन है, परन्तु मेवाड़के राजा महाराणा प्रतापको भी अपने खज़ानोंका ज्ञान न हो, यह माननेको स्वभावतः किसीका दिल तैयार न होगा। ऐसा मान लेना महाराणा प्रतापकी शासन-कुशलता और साधारण नीतिमत्तासे इनकार करना है। दूसरा सवाल यह है कि यदि भामाशाहने अपनी उपार्जित सम्पत्ति न देकर केवल राजकोषोंकी ही सम्पत्ति दी होती, तो उसका और उसके वंशका इतना सम्मान, जिसका उल्लेख श्री ओझाजीने पृ० ७८८पर किया है[1], हमें बहुत संभव नहीं दीखता। एक खज़ांचीका यह तो साधारण-सा कर्त्तव्य है कि वह आवश्यकता पड़नेपर कोषसे रुपये लाकर दे। केवल इतने मात्रसे उसके वंशधरोंकी यह प्रतिष्ठा (महाजनोंके जाति-भोजके अवसरपर पहले उसको तिलक किया जाये) प्रारम्भ हो जाये, यह कुछ बहुत अधिक युक्ति-संगत मालूम नहीं होता[2]।"

इस आलोचनामें श्रद्धेय ओझाजीकी युक्तिके विरुद्ध जो कल्पना की गयी है, वह बहुत कुछ ठीक जान पड़ती है। इसके सिवाय मैं इतना और भी कहना चाहता हूँ कि यदि श्री ओझाजीका यह लिखना ठीक भी मान लिया जाये कि महाराणा कुम्भा और साँगा आदि-द्वारा उपार्जित अतुल सम्पत्ति प्रतापके समय तक सुरक्षित थी—वह खर्च नहीं हुई थी, तो वह सम्पत्ति चित्तौड़ या उदयपुरके कुछ गुप्त खज़ानोंमें ही सुरक्षित रही होगी,

---

१. सम्मानकी वह बात इसी लेखमें पृ० १६८-१६९ और १७० में उक्त इतिहाससे उद्धृतकर दी गयी है।

२. त्यागभूमि : वर्ष २, अंक ४, पृ० ४४५।

भले ही अकबरको उन खजानोंका पता न चल सका हो, परन्तु इन दोनों स्थानोंपर अकबरका अधिकार तो पूरा हो गया था; और ये स्थान अकबर-की फ़ौजसे बराबर घिरे रहते थे, तब युद्धके समय इन गुप्त खज़ानोंसे अतुल संपत्तिका बाहर निकाला-जाना कैसे सम्भव हो सकता था ? और इसलिए हल्दीघाटीके युद्धके बाद जब प्रतापके पास पैसा नहीं रहा, तब भामाशाहने देश-हितके लिए अपने पाससे—खुदके उपार्जन किये हुए द्रव्यसे —भारी सहायता देकर प्रतापका यह अर्थ-कष्ट दूर किया है; यही ठीक जँचता है। रही अमरसिंह और जगतसिंह-द्वारा होनेवाले ख़र्चोंकी बात, वे सब तो चित्तौड़ तथा उदयपुरके पुनः हस्तगत करनेके बाद ही हुए हैं और उनका उक्त गुप्त खज़ानोंकी सम्पत्तिसे सम्पन्न होना सम्भव है। तब उनके आधारपर भामाशाहकी उस सामयिक विपुल सहायता तथा भारी स्वार्थ-त्यागपर कैसे आपत्ति की जा सकती है ? अतः इस विषयमें ओझाजीका कथन कुछ युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता, और यही ठीक जँचता है कि भामाशाहके इस अपूर्व-त्यागकी बदौलत ही उस समय मेवाड़का उद्धार हुआ था, और इसीलिए आज भी भामाशाह मेवाड़ोद्धारकके नामसे प्रसिद्ध हैं।[1]

---

१. यह अंश १ मार्च १९३० को लिखा गया जो कि १९३३ में मेरी राजपूतानेके 'जैनवीर' नामक पुस्तकमें छपा था। इस पुस्तककी प्रस्तावना श्री ओझाजीने लिखी थी और मेरे आग्रह करनेपर भी इस अंशके विरुद्ध एक शब्द भी उन्होंने नहीं लिखा था।

—गोयलीय

• • • •

हियेकी आँखोंसे जो देखा

•

भाईका त्याग

इधर भाई दूल्हा बनकर ससुराल गया, उधर बहिन भरी जवानीमें विधवा हो गयी। भाईके हाथका कँगना खुलने भी न पाया था कि बहनकी चूड़ियाँ टूट गयीं। इधर नववधूको माँग भरी जा रही थी, उधर बहनके सुहागकी माँग आ गयी। भाईका गठबन्धन बाँधा जा रहा था, बहनका गठबन्धन प्रस्थान कर रहा था। भाई सुबकती हुई दुलहिनको बिदा कराके ला रहा था, बहन डकारती हुई अपने दूल्हाको बिदा कर रही थी। एक ही डालके दो फूल विधिके विधानसे पृथक्-पृथक् हास्य और शोकमें लीन थे।

कली कोई जहाँ पर खिल रही थी।
वहीं एक फूल भी मुर्झा रहा था॥

—जिगर

इधर भाई दुलहिनको लेकर आया, उधर बहन निराश्रित होकर आश्रय खोजती चिरवैधव्य लिये आ गयी। भाईसे बहनकी ओर देखा न गया। वह हाय करके रह गया। उसकी युवकोचित अभिलाषाएँ सिमटकर रह गयीं।

एक रोज़ दबे पाँव अँधेरेमें दुलहिनके कमरेमें प्रवेश किया तो दुलहिन सकुचाकर रह गयी। वह लाज और ग्लानिसे सिहर उठी। तो भी साहस बटोरकर बोली,

"बहन आँखोंमें आँसू लिये फिरे, और आपकी आँखोंमें काम छलके? तुम्हें सती-तेजकी सौगन्ध, मेरे हाथ न लगाना। आत्म-विस्मृत होनेके लिए आपको बाजार पड़ा है।"

उत्तरमें दुलहिनने नारी-कण्ठ सुना, "लाडो रानी, मैं हूँ अभागी ! भाईने बरबस मुझे धकेल भेजा है। न आती तो आत्म-हत्यापर उतारू थे।"

दुलहिन प्यारकी बातोंसे बहनका दुख भुलाने लगी। पर, बहन भाई-भाभीके इस मौन संकल्पको समझनेका प्रयत्न करती रही। पचीस वर्ष ननद-भावज एक साथ सोयीं, बैठीं, हँसीं और रोयीं। मगर भाईने दुलहिनका गोरा या काला मुँह भी न पहचाना। बहन वैधव्यको याद करके एक दिन भी न रोयी। पैंतालीस वर्षकी आयुमें बहन अपने सतयुगी भाई-भावजको छोड़कर स्वर्गासीन हुई।

तब दो वर्ष बाद भावजने एक पुत्र जना। जिसने युवा होकर शेरके आक्रमणपर उसकी पीठपर चढ़कर उसका गला दाबकर मार डाला। लोगोंने सुना तो बोले, "लव-कुश दोनों भाइयोंने कलियुगमें एक ही शरीरमें जन्म लिया है।" शायद वह युवक स्वयं अथवा उसकी सन्तान अम्बाले या हिसार ज़िलेके किसी गाँवमें अभीतक जीवित है।

१९५० ई०

इज़्ज़त बड़ी या रुपया ?

दिल्लीकी एक प्रसिद्ध सर्राफ़ेकी दुकानपर चालीस-पच्चास हज़ार रुपयोंकी गिन्नियाँ गिनी जा रही थीं कि एक उचटकर इधर-उधर हो गयी। काफ़ी तलाश करनेपर भी नहीं मिली। उस दुकानपर उनका कोई ग़रीब रिश्तेदार भी बैठा हुआ था। संयोगकी बात कि उसके पास भी एक गिन्नी थी। गिन्नी न मिलते देख, उसने मनमें सोचा कि शायद अब तलाशी ली जायेगी। ग़रीब होनेके नाते मुझीपर शक जायेगा। मेरे पास भी गिन्नी हो सकती है, यह किसीको यक़ीन नहीं आयेगा। गिन्नी भी छीन लेंगे और बेइज़्ज़त भी करेंगे। इससे तो बेहतर यही है कि गिन्नी देकर इज़्ज़त बचा ली जाये।

ग़रीबने यही किया। जेबमें-से गिन्नी चुपके-से निकालकर ऐसी जगह डाल दी कि खोजनेवालोंको मिल गयी। गिन्नी देकर वह ख़ुशी-ख़ुशी अपने घर चला आया। बात आयी-गयी हुई।

दीवालीपर दावात साफ़ की गयी तो उसमें-से एक गिन्नी निकली। गिन्नीको दावातमें-से निकलते देख लाला साहब बड़े क्रुद्ध हुए, "रुपयोंकी तो बिसात ही क्या, यहाँ गिन्नियाँ इधर-उधर रुली फिरती हैं, फिर भी रोकड़-बहीका जमा-खर्च ठीक मिलता रहता है। हद्द हो गयी इस अन्धेर-की।"

रोकड़िया परेशान कि यह हुआ तो हुआ क्या ? इतनी सचाई और लगनसे हिसाब रखनेपर भी यह लांछन व्यर्थमें लग रहा है। सोचते-सोचते उसे उस रोजकी घटना याद आयी। काफ़ी देर अक़लसे कुश्ती लड़नेपर उसे खयाल आया कि कहीं वह गिन्नी उचटकर दावातमें तो नहीं गिर गयी थी। तब वह गिन्नी मिली कैसे ? शायद उस ग़रीबने अपने पाससे डालकर खुजवा दी हो। यह खयाल आते ही वह स्वयं अपनी इस मूर्खतापर हँस पड़ा, "भला उसके पास गिन्नी कहाँसे आती ? उसके बड़ोंने भी कभी

गिन्नियाँ देखी हैं जो वह देखता ? और शायद कहींसे झाँप भी ली हो तो वह इतना बुद्धू कब है जो उसे हमें दे देता ?"

जब कल्पनाने साथ नहीं दिया तो यह उलझा हुआ विचार लाला साहबके सामने पेश किया गया। लाला साहब सब समझ गये। उनका रिश्तेदार ग़रीब तो ज़रूर है, पर विश्वस्त और बाइज़्ज़त है, यह वे जानते थे। अतः लाला साहब उसके पास गये और वास्तविक घटना जाननी चाही तो काफ़ी टालमटोलके बाद उसने ठीक स्थिति समझा दी। लाला साहब गिन्नी वापस करने लगे तो बोला,

"भैया साहब, मैं अब इसे लेकर क्या करूँगा ? मेरी उस वक़्त आबरू रह गयी यही क्या कम है ? आबरूके लिए ऐसी हज़ारों गिन्नियाँ क़ुर्बान। मेरे भाग्यमें गिन्नी होती तो यह घटना ही क्यों घटती ? मुझे सन्तोष है कि मेरी बात रह गयी। रुपया तो हाथका मैल है, फिर भी इकट्ठा हो सकता है, पर इज़्ज़त-आबरू बह जानेपर फिर वापस नहीं आती।"

उक्त घटना सुनकर हमारे एक परिचित महाशय बोले, "अजी साहब, एक इसी तरहकी घटना हम आप-बीती सुनाते हैं,

"हमारे पिताजीके एक मित्र हमारे ज़िलेमें रहते हैं। वे जब किसी मुक़दमेके सम्बन्धमें या सामान खरीदनेको शहर आते हैं तो हमारे यहाँ ही ठहरते हैं। एक रोज़ उनका पत्र आया कि 'जिस चारपाईपर मैं सोया था, अगर वहाँ लाल रंगका अँगोछा मिले तो सँभालकर रख लेना' अँगोछा तलाश किया गया, मगर नहीं मिला। वे जाड़ोंके बिस्तरोंमें सोये थे और जाड़े खत्म होनेसे वह ऊपर टाँड़पर रख दिये गये थे। सिर्फ़ एक अँगोछेके लिए घर-भरके इतने बिस्तरे उठाकर देखनेकी ज़रूरत नहीं समझी गयी। और अँगोछा नहीं मिलनेकी उन्हें सूचना भिजवा दी गयी। बात आयी-गयी हुई। वे हमेशाकी तरह हमारे यहाँ आते-जाते रहे।

दिवालीपर मकानकी सफाई हुई और जाड़ोंके बिस्तरे धूपमें डाले गये तो उनमें-से लाल अँगोछा धमसे नीचे गिरा। खोलकर देखा तो दस हज़ारके नोट निकले। हम सब हैरान कि यह इतने नोट कहाँसे आये, किसने यहाँ छिपाकर रखे। सोचते-सोचते खयाल आया कि हो-न-हो यह रुपये उनके ही होंगे। इस अँगोछेमें रुपये थे, इसीलिए तो उन्होंने अँगोछा तलाश करके रखनेको लिखा था, सिर्फ़ अँगोछेके लिए वे क्यों लिखते? मैं उनके पास रुपये लेकर गया और उलहना देते हुए बोला, "चाचाजी, आप भी ख़ूब हैं, इतनी बड़ी रक़मका तो ज़िक्र भी नहीं किया, सिर्फ़ अँगोछा सँभालकर रख लेनेको लिख दिया और हमारे मना लिख देनेपर भी आपने कभी इशारा तक नहीं किया। बताइए, कोई नौकर ले गया होता, टाँडपर चूहे काट गये होते, तो हमारा तो हमेशाको काला मुँह बना रहता।"

चचा हँसकर बोले, "भाई, जितनी बात लिखनेको थी, वह तो लिख ही दी थी। मेरा खयाल था कि तुम समझ जाओगे कि कोई-न-कोई बात ज़रूर है। वर्ना दो आनेके पुराने अँगोछेके लिए दो पैसेका कार्ड कौन खराब करता? और रुपयोंका ज़िक्र जान-बूझकर इसलिए नहीं किया कि अगर कोई उठा ले गया होगा, तो भी तुम अपने पाससे दे जाओगे। अपनी इस असावधानीके लिए तुम्हें परेशानीमें डालना मुझे इष्ट न था।"

अनेकान्त, दिल्ली; अप्रैल १९४८ ई०

मनका पाप

मोण्टगुमरी जेलमें मेरा एक साधु-स्वभावी व्यक्तिसे परिचय हुआ। ब-मुश्किल पाँच फ़ुटका क़द और चेहरा-मुहरा भी बस यों ही, देख कर हँसी आती थी। पर जब सुना कि ग्रेजुएट हैं, साहित्य, इतिहास, राजनीति और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिका भी काफ़ी ज्ञान रखते हैं, गीतापर भी विवेचन करते हैं, एक प्रसिद्ध नेताके पर्सनल सेक्रेटरी रहे हैं, तब उनसे परिचयमें आनेका कौतूहल प्राप्त हुआ और हर्ष है कि मेरे हृदयमें उत्तरोत्तर उनके लिए आदरके भाव जमते ही गये। हम सब उन्हें 'लालाजी' कहा करते थे।

शुरू-शुरूकी बात है, हम अभी एक-दूसरेके परिचयमें पूरे तौरसे नहीं आये थे कि लालाजीने एक पत्र बाहर भेजनेके लिए हिन्दीमें लिखा। जेलमें तीन महीनेमें एक कार्ड लिखनेको मिलता है, पर हमें जवाबी पत्र मिलने और उनको लिखकर भेजनेकी रियायत मिली हुई थी। जेलमें प्रत्येक पत्र अधिकारियों-द्वारा पढ़े जानेपर हमको मिलता तथा डाकमें डाला जाता था। हममें-से बहुत-से हिन्दीमें पत्र लिखते थे और जेल-अधिकारी हिन्दी न जाननेके कारण हम लोगोंमें-से एक-दूसरेसे पढ़वा लेते थे। लालाजीने भी पत्र हिन्दीमें लिखा था, अतः वह मुझसे पढ़वाया गया। पत्र किसी महिलाके नाम था। मैं नहीं चाहता था कि मैं उसे पढ़ूँ। मैं वैसे ही किसी दूसरेके पत्र पढ़ना सभ्यताके विरुद्ध समझता हूँ, उसपर भी वह महिलाके नाम था। अतः पहले तो मैंने ज़रा टालमटूल की, पर यह सोचकर कि न पढ़ूँगा तो जेलवालोंको पत्रपर शक होगा, न जाने वह फिर किससे पढ़वायें अथवा पत्र डाकमें भेजें ही नहीं। मन-ही-मन पत्र पढ़ना प्रारम्भ किया। पत्र जेल-अधिकारियोंको सुनाकर पढ़नेकी ज़रूरत नहीं थी। वे तो केवल हमसे इतना विश्वास चाहते थे कि पत्रमें ऐसी-वैसी गवर्नमेण्ट या जेलके ख़िलाफ़

बात लिखी न चली जाये और पत्रमें ऐसी कोई बात नहीं है, यह विश्वास दिलानेपर वे सन्तोष कर लेते थे। और सच बात तो यह है कि हमने शायद ही विश्वासघात किया हो। यद्यपि पत्र जोरसे पढ़नेका उनकी ओरसे आदेश नहीं था, पर मन-ही-मन समूचे पत्र पढ़नेका स्वांग तो खेलना पड़ता ही था, ताकि उनका विश्वास बना रहे। लालाजीने किसी महिलाको सम्बोधित करके आगे लिखा था, "तुम अब जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन करनेकी भावना रखती हो, यह पढ़कर मुझे हर्ष हुआ।" इससे आगे पत्र पढ़ना मेरे अन्तःकरणने अस्वीकृत कर दिया। इतनी गोपनीय बात पढ़ लेना और वह भी ऐसे व्यक्तिकी, जिसे मैं आदरकी दृष्टिसे देखता हूँ, मेरे कायर मनसे नामुमकिन था। पत्रमें राजी-खुशीके अलावा और कुछ नहीं है, यह कहकर मैंने वह पत्र लेटरबक्समें डालनेको दे दिया।

पत्र तो चला गया, पर मेरे पापी मनमें हलचल मचा गया। यह पत्र लालाजीने अपनी स्त्री, बहन या पुत्री आदिमें-से किसको लिखा, कुछ समझमें नहीं आया, क्योंकि नामसे पहले केवल 'प्रिय' लिखा हुआ था और यह विशेषण स्त्री, बहन और पुत्री सबके लिए इस्तेमाल हो सकता था। अतः यह समझमें न आया कि यह लिखा किसको है? फिर भी है तो कोई लालाजीकी आत्मीय न? तब क्या लालाजी-जैसे देवता पुरुषके घरमें भी अभीतक व्यभिचारका ताण्डव था? हृदयमें एक आंधी-सी उठ खड़ी हुई। मैंने ऐसा पत्र क्यों पढ़ा, जिसके पढ़नेसे मेरे हृदयमें किसीके प्रति सद्-भावनाएँ कम हों। मुझे काफ़ी पश्चात्ताप-सा हुआ, पर मेरे छिद्रान्वेषी कलुषित हृदयने यह बात मज़बूतीसे पकड़ ली। जितना ही मैं उसे भुलानेका प्रयत्न करता, लालाजीको देखते ही वह बात उतनी ही हरी हो जाती।

आठ-नौ माहके बादकी बात है, बैरिकमें बन्द हो जानेपर रात्रिको हस्बदस्तूर मेरे स्थानपर गोष्ठी जमी हुई थी। उस निठल्ले वक़्तमें अच्छी-

बुरी दुनिया-भरकी सभी बातें होती थीं। मनोरंजन हो रहा था कि मैंने दूर बैठे हुए एक साथीकी ओर इशारा करते हुए हँसानेकी नीयतसे कहा, "देखो, यह अपने मनमें सोचता होगा कि—ये लोग भी कैसे········।" वाक्य मेरे मुँहसे पूरा निकला भी न था कि लालाजीने मुझसे धीरेसे कहा, "देखो, हमारे बारेमें कोई कुछ सोचे या न सोचे, पर हमें दूसरेके मनमें क्या है, यह नहीं सोचना चाहिए। हमारे लिए सोचनेको और बहुत-सी बातें हैं। हमारे बारेमें कोई क्या सोचता है और क्या कहता है, इसकी फाइल हम क्यों बनायें? अपने जीवन-पथमें हमें बहुत-सी उपयोगी बातें सोचनी पड़ती हैं। फिर क्यों न हम वही बातें सोचें जो हमें अपने लक्ष्य तक निष्कण्टक पहुँचा दें। हमें तनिक भी हलके बना देनेवाले विचार अपने पास भी नहीं फटकने देने चाहिए, और तुमसे तो मैं ऐसी मनोवृत्तिकी क़तई आशा नहीं रखता था।"

लालाजीने अपने मनकी बात किन शब्दोंमें और किस ढंगसे कही, यह तो अब याद नहीं, पर भाव यही थे। मेरे ऊपर घड़ों पानी पड़ गया। फिर उन्होंने ज़रा औरोंको भी सुनी जाने लायक़ आवाज़में कहा, "देखो, बुरी बान पड़ते देर नहीं लगती। प्रारम्भमें नदीका उद्गम अत्यन्त सूक्ष्म होता है, पर धीरे-धीरे वही महान् रूप धारण कर लेता है। वटके वृक्षका बीज भी शुरूमें बहुत छोटा होता है, पर समय पाकर वही विशाल बन जाता है। साँपका ज़रा-सा विष मनुष्यके एक रोम-छिद्रमें प्रवेश होकर सारे शरीरमें फैल जाता है, उसी तरह पाप-वासनाएँ, खोटी आदतें, कलुषित भावनाएँ प्रारम्भमें प्लेगके कीड़ेको तरह दृष्टि-अगोचर होती हैं। यह भेड़ बनकर आती हैं पर शरीरमें प्रवेश करते ही रौद्ररूप बना लेती हैं। व्याघ्रसे बच जाना सरल, पर गो-मुखी व्याघ्रसे बचना ही बुद्धिमत्ता है। पाप भी गो-मुखा व्याघ्र है। साँपके चिकनेपन और आगकी चमकसे जैसे बालक आकर्षित होता है, वैसे हो प्रारम्भमें इनका सौम्यरूप देखकर मनुष्य भुलावेमें आ जाता है। बहुत ही संयम और सतर्कतासे रहा जाये तभी

इनके विषैले प्रभावसे बचा जा सकता है।" कुछ ऐसे ही शब्दोंमें लालाजीने मुझ छिद्रान्वेषीको समझाते हुए आगे कहा,

"मुझमें भी अनेक खोटी आदतें न जाने कब और कहाँसे चिमट गयी हैं। हम अपनी ऐसी बहुत-सी कुटेवोंको भी नहीं जान पाते, जिनके कारण हमारे मित्र, पड़ोसी और कुटुम्बी हमसे तंग रहते हैं, जो हमें जनताकी दृष्टिमें हलका, उपहासयोग्य और घृणित बनाती हैं। हम जिन्हें हार समझकर चिमटाये रहते हैं, वह हमारे काट खानेको साँप होती हैं। कहनेको तो देखिए बहुत मामूली-सी आदत है, परन्तु मुझे इसने एक बार बहुत ही नीचा दिखाया। आपने नोट किया होगा कि मैं बातचीतके दौरानमें—'समझे कि नहीं,' अकसर कहता हूँ। यद्यपि मेरा यह तकियाकलाम अब बहुत कुछ कम हो गया है, फिर भी पूरी तरहसे अभी नहीं छूटा है। मैं एक बार महात्मा गाँधीजीसे मिलने गया। दस मिनिटकी बात-चीतमें मैंने दसों बार 'समझे कि नहीं प्रयोग किया और महात्माजी भी 'जो समझ रहा हूँ' उत्तरमें कहते रहे। मुझे अपनी इस उद्दण्डताका तनिक भी ज्ञान न हुआ। महात्माजीसे मिलकर बाहर आये तो साथीने व्यंग्य करते हुए कहा, "ओ हो! अब तो आप महात्माजीको भी समझानेकी क्षमता रखते हैं।" मैंने अचकचाकर पूछा तो उन्होंने मेरे तकियाकलामकी बात कही। उस समय मुझे कितनी लज्जाका अनुभव हुआ, मैं आपको बता नहीं सकता"

फिर बोले, "देखो दुनिया हमें भला कहती है, इसीसे अपनेको भला समझकर हमें भूल नहीं जाना चाहिए। दुनियाका क्या है? भलेको बुरा और बुरेको भला कहते हुए उसका बिगड़ता क्या है? पतिव्रता सीताको वह कलंक लगा सकती है और वेश्याको वह मंगलामुखी कह सकती है। इसलिए हमें अपने अन्तश्चक्षुसे देखना चाहिए कि हम क्या हैं? कहीं हम आपेमें भूलकर स्वयं तो धोखा नहीं खा रहे हैं। दुनिया हमारा आदर करती है, केवल इसीलिए तो हमें महात्माके पदपर नहीं बैठ जाना चाहिए।

महात्मा पदपर तो हम तभी आसीन हो सकेंगे, जब अन्दर छिपे हुए चोरको निकाल बाहर कर सकेंगे। दुनिया हमारे अन्दरके अवगुणोंको चाहे न देख सके, पर यह चैतन्य-स्वरूप ज्ञानमयी आत्मा तो सब कुछ देखती है। यह तो उस छिपी हुई ग्लानिके आगे नहीं पनप सकती। इसके विकासके लिए उस दुर्गन्धको निकालना अत्यन्त आवश्यक है।

"मुझे ही देखो न! मैं रोज़ाना ज्ञानकी बातें बघारता हूँ, पर जितना कहता हूँ, उसका सौवाँ हिस्सा भी अपनेको नहीं बना पाता। मुझसे तो मेरी पत्नी ही हज़ार दर्जे श्रेष्ठ है। इसी हफ़्तेमें उसके दोनों भाई भरी जवानीमें मर गये। एक बी० ए० की और दूसरा वैद्यककी अन्तिम परीक्षा देकर घर आया था, सात रोज़में मामूली बुखारमें दोनों चल बसे। मैंने सुना तो रुलायी आ गयी, पर पत्नीका पत्र आया है, जिसके पढ़नेसे मालूम होता है वह संसारको मोह-मायासे बहुत ऊँची हो गयी है।"

कहते हुए उनका गला भर आया, उन्होंने वह पत्र मेरे सामने डाल दिया। पत्रमें भाइयोंकी मृत्युके बारेमें दिलासा देनेके बाद लिखा था: "जीवनधन, समझते हो, मैं आपका जेल-जीवन, कृश शरीर और वह फटे-पुराने कपड़े देखकर घबरा जाऊँगी, इसीसे तो मुझे जेलमें दर्शनार्थ आनेकी आपने अनुमति नहीं दी। आपकी अनुमति नहीं है तब नहीं आऊँगी। पर, प्राणनाथ, मैं स्वयं वीर न सही, वीर-पत्नी तो हूँ। जिसका पति देश-सेवाके लिए जेलकी यन्त्रणाएँ सह रहा है, वह घबरायेगी क्यों? उसके लिए तो मुख ऊँचा करनेका समय ही अब आया है। जहाँ देशसेवाके लिए बिलखते बच्चोंको छोड़कर नारियाँ जेलमें जा रही हैं, वहाँ आप मुझे क्या इतनी गयी-बीती समझते हैं कि मैं स्वयं तो जेल न गयी, पर अपने पतिके जेल-प्रवासपर भी दुःखी रहूँगी?" आगे लिखा था।

"सर्वस्व, सुना है गांधी-अर्विन समझौता हो गया तो सब राज-नैतिक क़ैदी छोड़ दिये जायेंगे। तब आप भी जेल-मुक्त होंगे। इस उप-

लक्ष्यमें क्या आप मुझे एक उपहार देंगे ? मैं आपसे इस अवसरपर दामन फैलाकर ब्रह्मचर्यकी भीख माँगती हूँ । जहाँ आपने देशके लिए इतना कष्ट सहा, वहाँ मेरे लिए इतना त्याग और सही । भगवान्की दयासे बाल-बच्चे भी हैं अब क्यों अधिक गुलाम उत्पन्न किये जायें । मेरी आन्तरिक अभिलाषा है कि हम अब ब्रह्मचर्यसे रहकर लोक-सेवामें हाथ बटायें । क्या आप जेलसे ब्रह्मचर्यका व्रत लेकर आयेंगे ? प्राणनाथ, मेरे मनकी अन्तिम साध पूरी करो........।"

पत्र आगे न पढ़ा गया । जैसे कलेजेमें किसीने घूँसा मार दिया । अरे छिद्रान्वेषी पापी मन, इसी साध्वीके प्रति तुझमें मैल भरा हुआ था ! प्रायश्चित्तस्वरूप माँ कहकर उसे मन-ही-मन प्रणाम किया ।

वीर, दिल्ली; १३ जनवरी १९४० ई०

बिहारीलाल

भाई बिहारीलाल[1] उन बलवटेरोंमें-से थे, जो सन् ३०में गाँधीकी आँधीमें उखड़कर किनकिलाबका नाग लगाते हुए मोण्टगुमरी जेलमें आ पड़े थे। मैं भी उन दिनों उसी खैराती होटलमें रोटियाँ तोड़ रहा था। यारोंसे मालूम हुआ कि दिल्लीसे एक और जत्था आया है और उनके साथ एक बुद्धू भी आ फँसे हैं। मनुष्यका स्वभाव प्राय: विनोदी होता है। इस ससुराल-प्रवासमें एक-न-एक विनोदी जीव फँसा ही रहता था। दस-पन्द्रह रोज़से कुछ इनका अभाव खटका ही था, कि भगवान्ने जेलका फाटक खोल मनकी मुराद पूरी की।

बान बटनेको बैठे ही थे कि यारोंके मजमे-में बिहारीलाल भी आ धमके। शक्लो-शबाहत देखने क़ाबिल, अल्लाह मियाँने ख़ुद अपने हाथोंसे शायद इन्हें गढ़ा था। चाल इनकी चीना औरतसे भी शोख़ी-भरी। हँसीमें अजीब बाँकपन। आँखें अलबत्ता छोटी, गोल और चुन्धी थीं, पर हँसनेमें कुछ ऐसी खिलती थीं, कि देखते बनती थीं। नारियल-जैसे सिरपर नहा-धोकर जब आप तेल चुपड़ लेते थे, तो मक्खियाँ मुबारकबाद देने आती थीं। लोग उन्हें ठेकेदार कहते थे; परन्तु मैंने उनका नाम मिस छछूँदर फिट किया। अपना अनोखा नाम-संस्कार होते देख बिहारीलाल खिल-खिलाकर हँस पड़े। यारोंका उत्साह बढ़ गया। उँगली पकड़ते ही

---

१. बिहारीलाल विनोदी स्वभावके थे। उनसे इसी तरहका विनोदी व्यवहार था। अतः उसी विनोदी ढंगपर यह घटना लिखी गयी थी और यह हंसमें (शायद सन् ३३ में) प्रकाशित हुई थी। पाठकोंको इस स्तम्भमें लिखनेका यह ढंग शायद अखरेगा, इसके लिए मैं मजबूर हूँ, क्योंकि जो घटना जैसी हो, उसे वैसी ही भाषामें लिखना मुझे उपयुक्त मालूम हुआ।

पहुँचा पकड़नेकी दावत मिली। फिर तो शनैः-शनैः तीतर, कबूतर, बटेर, गिरगट, मेंढक आदि कितने ही लाड़-प्यारके नामोंसे सम्बोधित होने लगे, और तारीफ़ तो यह है कि उपर्युक्त नाम सुनकर उन्हें एक प्रकारका आह्लाद ही होता था। उस समय तो इन सब उपनामोंका एक श्लोक भी बन गया था; पर अब अक़लपर ज़ोर देनेपर भी नहीं सूझ पड़ता और नया लिखनेमें असलियतका लुत्फ़ जाता है।

गाँधी-अर्विन समझौतेमें सारे बलव्रटेर उड़ गये, बिहारीलाल फँसे रह गये। खुशक़िस्मतीसे उनके सत्संगका लाभ उठानेका मुझे भी दो-तीन यारोंके साथ रहनेका मौक़ा मिल गया। भीड़ छट जानेपर असली जौहर देखनेका अवसर मिला। प्रातःकाल उठे और हज़रत सन्ध्यापर बैठ गये, कितने ही उपसर्ग किये जाते, पर टससे-मस न होते, अलबत्ता मुसकराते ज़रूर रहते। हज़रत सन्ध्यापर-से उठें, कि यार लोग उनके हिस्सेकी दाल-तरकारी पहले ही चट कर जाते, मगर आप रूखी रोटी ही टमर-टमर निगल जाते और इस अन्दाज़से, गोया नूरजहाँबेगम नाश्ता कर रही हों। रोटी ठूँस लेनेके बाद सबसे पहले अपना बान बट लेते, फिर बारी-बारीसे सबका हाथ बटाते। दोपहरको दलिया और चने आते, तो हज़रतकी नीयत सबके हिस्सेको चट कर जानेकी रहती, पर यह दाँव रोज़ नहीं चल पाता। यही उनकी दैनिक-चर्या थी।

अब हमारी भलमनसाहत मुलाहिज़ा फ़रमाइए। हज़रतके सोते हुए कानमें पानी डाल देना, मुँहपर स्याही उँडेल देना, पाउडर लगाकर भवें साफ़ कर देना, पायजामेका इज़ारबन्द काट देना, कपड़े भिगो देना, बिस्तरे छिपा देना, चलते हुए खोपड़ीपर चपत कस देना, एक-दूसरेको धक्का दे देना, अपने पास बुलाकर पहले मीठी-मीठी बातें करना, फिर दुतकार देना, और उनके कुढ़नेपर खिलखिलाकर हँस पड़ना, यह हमारा दैनिक कृत्य था।

दरयाफ़्त करनेपर मालूम हुआ कि आप मेरठ ज़िलेके किसी गाँवमें भंग वग़ैरहकी ठेकेदारी करते थे, इसीलिए आप ठेकेदार सम्बोधनपर बड़े अधिकारपूर्वक बोलते थे। पिकेटिङ्के ज़मानेमें आपके यहाँ भी धरना दिया गया। एक रोज़ रातको दो स्वयंसेवक आये और इनसे भोजन देने और रातको वहीं पड़ रहनेके लिए प्रार्थना करने लगे। तब आपने फ़रमाया—"ससुरो, हमारे यहाँ ही पकेटिङ् करो और हमींसे रोटी और सोनेकी जगह माँगो! चलो निकलो यहाँसे। तुम्हारी ऐसी-तैसी!"

स्वयंसेवकोंने भविष्यमें धरना न देनेका विश्वास दिलाया, तब आपने प्रेमपूर्वक भोजन बनाकर खिलाया और उन्हें अपनी चारपाई सोनेको देकर स्वयं ज़मीनपर पड़ रहे। सवेरा होते ही स्वयंसेवक उठे और बड़े इत्मीनानसे आपकी ही दुकानपर धरना देने बैठ गये। इस कलियुगमें उपकारकी ऐसी मिट्टी पलीद होते देख आपको वैराग्य-सा हो गया और दुकान बन्द करके आप दिल्ली भाग गये और यहींसे मोण्टगुमरी—जिसे हम ख़ैराती होटल या ससुराल कहा करते थे—फेंक दिये गये।

देहाती होनेसे आपकी भाषा भी बड़ी ऊबड़-खाबड़ थी। क़ैंचीको कंच्ची, सिविलसर्जनको सलेटसर्जन, वालिण्टियरको बलबटेर, इन्क़िलाबको किनकलाब या ऐनकलाब, मिठाईको मठियाई, पिकेटिङ्को पकेटिङ् कहकर हमारे पेटोंमें बल डालते रहते थे।

स्वराज्य क्या है, यह उन्हें मालूम न था। राष्ट्रीय-संग्राम क्यों छिड़ा हुआ है, जेल लोग किसलिए जा रहे हैं, गाँधी किस बलाका नाम है, इसका उनके सींगको भी पता न था, और सच बात तो यह है कि उनके मौजी दिमाग़में इन सब बातोंके रखनेको गुंजाइश भी न थी।

उनकी दिव्यदृष्टिमें धर्मोंमें श्रेष्ठ धर्म आर्य-समाज और शास्त्रोंमें शास्त्र सत्यार्थप्रकाश था। इन्हींकी अकसर दुहाई देते थे, बात-बातमें इन्हींका हवाला देते थे। अपने हस्ताक्षर भी कर लेते थे, यह तो मुझे इस समय याद नहीं,

पर सत्यार्थप्रकाश उन्हें कण्ठस्थ था। ज़रा देरसे सोकर उठे, और उन्होंने, इसे उक्त ग्रन्थराजसे कुटेव सिद्ध कर डाला। खाना खाते समय ज़रा हँसे नहीं कि सत्यार्थप्रकाशका हण्टर पड़नेमें चूक नहीं होती। ज़रा मज़ाक़ किया और उन्होंने उसे व्यभिचार प्रमाणित किया। ग़रज यह है कि सोते-उठते, खाते-पीते, उनके इस बेमौसमी उपदेश पीते-पीते हमारे पेट बढ़ गये। पर उन्हें रहम न आया। रात्रिको ज़रा साँस लेनेका अवकाश मिलता, जी चाहता कि तफ़रीहकी बातें करें कि आप बीचमें कूद पड़ते। वही अपनी राम-कहानी। फ़िज़ूल बैठे क्या करते हो, सन्ध्या क्यों नहीं कर लेते। सन्ध्या नहीं आती है, तो आओ भजन ही गावें, और लगते फिर पंचम स्वरमें आलापने।

यार लोग तो इस मौक़ेके लिए उधार खाये बैठे ही रहते थे। एक कहता, "बड़े भाईकी स्वर-लहरी तो देखिए, कट्टो गिलहरी भी झेंप जाये।" दूसरा कहता, "अमाँ स्वरको क्या, गलेके लोचको देखिए, गोया बुढ़िया नानी चक्की पीस रही हो।" कोई कहता, "अजी, तरन्नुम तो देखिए, बैशाखनन्दन भी चीं बोले।" कोई कहता, "शाइरी तो मुलाहिज़ा फ़रमाइए, तुलसी, सूर स्वर्गमें बैठे अपना सिर धुन रहे होंगे।"

यारोंके बढ़ावेमें उन्हें कुछ अजीब लुत्फ़ आता था। यही गायन फिर नृत्यमें परिवर्तित हो जाता। यह नाच भारतकी कौन-सी प्राचीन नृत्य-कलाका द्योतक है, यह तो हम नहीं जानते थे; किन्तु हम इसे मेढक-नृत्य कहते थे।

छह माहके बाद उन्हें उस खैराती होटलसे धक्के मिले, तो मुँह लटकाये हुए सीधे दिल्ली आये और यहीं हवन-सामग्री और भजनोंकी किताबें फेरीमें बेचकर चैनकी वंशी बजाने लगे।

बिहारीलालके दस माह बाद हम भी दुत्कार दिये गये। अपना-सा मुँह लेकर हम भी दिल्ली चले आये। सिरपर झेंप सवार थी, कि कोई

देख न ले किसीको खबर तक न की। अँधेरे-अँधेरेमें घर पहुँचे; पर न जाने कौन शैतान कानों-कान कह आया कि आवारा मालपर चीलकी तरह मजमा टूट पड़ा। इनमें अपने-पराये, सगे-सम्बन्धी, यार-दोस्त सभी थे। पहले प्रश्नोंकी बौछार हुई, फिर सहानुभूति प्रदर्शित की गयी, फिर तारीफ़ों-के पुल बाँधे गये, जिन्हें सुनकर मेरी छाती मारे आत्म-गौरवके फूल जाती थी, जी चाहा कि कह दूँ, कि जबतक स्वराज्य न मिलेगा, घर पानी तक न पीऊँगा, और चल दूँ सीधा अभी जेलको; पर मनोभाव ज़ब्त कर गया।

आत्म-प्रशंसा सुननेसे अभी जो भरा भी न था कि उपदेशोंकी करारी चपतें मुँहपर पड़ने लगीं। एक बोले, "दो सालमें शरीरका ढेर कर लिया, घर बरबाद हो गया सो अलग, क्या आया हाथमें? मुफ़्तमें सत्यानाश कर लिया।"

दूसरे बोले, "ख़ैर, अब जो हुआ सो हुआ, अब आइन्दाके लिए कान पकड़ लो। तुम्हारे एकके न होनेसे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है।"

तीसरे अन्यत्र नज़दीकी बोले, "भाई, तुम्हारा क्या बिगड़ा, मज़ेसे जेलमें जा बैठे, हमें न देखो रोते-रोते आँखें सुजा लीं और काया मट्टी हो गयी, सो मुफ़्तमें।"

इसी प्रकार उतार-चढ़ावकी कई रोज़ तक बातें सुननेको मिलीं। पाँच-छह रोज़ बाद बिहारीलालने सुना, तो दौड़े हुए आये। देखते ही दिल बाग़-बाग़ हो गया। मनमें सोचा जेलकी हरकतोंको दुहराकर यह मुझे शरमिन्दा ज़रूर करेगा। मगर बिहारीलाल तो बिहारीलाल थे। बातें करते हुए हाथीकी तरह झूम रहे थे, चलते समय मेरे आगे साठ रुपयेके नोट रख दिये। मैंने हैरानीसे पूछा, "बड़े भाई, यह क्या?" वह बोले, "सवादो सालमें घर आया है, यहाँ क्या खत्ती गढ़ी हुई है, जिसे तू खायेगा। आठ-नव महीनेमें यही जोड़ पाया हूँ, यह तेरे निमित्तके ही हैं।"

भाई भाईपै न्योछावर

मोण्टगुमरी जेलमें हमारी बैरिकपर एक पीली वर्दीवाला मुसलमान नम्बरदार तैनात था। वह पाचों वक़्त नमाज़ पढ़ता और बाक़ी टाइममें क़ुरान। शक्लो-शबाहतसे भलमनसाहत टपकती थी और सचमुच था भी वह ऐसा ही। उम्र लगभग ५०-५५ की होगी। २० सालकी सज़ा पूरी करनेमें ५-६ महीने बाक़ी रहे थे। उसे देखकर कभी ख़याल आता कि न जाने किस भलेमानसने इस ईसामसीहकी भेड़को दूसरेके भुलावेमें क़ैद किया है ? इस बछियाके ताऊसे क्या गुनाह बना होगा ? और कभी ख़याल आता—अजी, ऐसे ही भोली-भाली शक्लवाले क़हर ढाते हैं। इन जैसोंका वह आलम है कि 'हो जायें ख़ून लाखों, लेकिन लहू न निकले', कुछ-न-कुछ हरकत की होगी तभी तो हज़रत धर लिये गये, वर्ना किसका सिर फिरा है जो नमाज़ अदा करते और क़ुरान पढ़ते हुए इन्हें पकड़ता ? एक बार उससे पूछा भी तो हँसकर टाल दिया, बताया नहीं।

उसी जेलमें उन दिनों उसका छोटा भाई भी क़ैद था। अनेक जेलोंमें पृथक्-पृथक् रहते हुए सौभाग्यसे वे दोनों वहाँ मिल गये थे। दोनों एक-दूसरेसे बहुत फ़ासलेपर रहते थे, पर कभी-कभी मिलन हो जाता था। एक दिन मैंने छोटे भाईसे पूछा तो वह बोला, "मेरी नालायक़ीसे यह सज़ा भुगत रहा है। मैंने एक आदमीको क़त्ल कर दिया था, जब पुलिस मेरी तलाशमें आयी तो इसने ख़ुद क़ुसूर तस्लीम कर लिया। भाईको फँसते देख मैंने अपना गुनाह क़ुबूल कर लिया। पुलिसने मुझे भी थाम लिया। मगर यह न माना और अदालतमें भी अपनेको ही मुजरिम साबित करनेकी कोशिश की। मैं अपनेको क़ातिल कहता था और यह अपनेको। आख़िर हम दोनों

को बीस-तीस सालकी सज़ा हुई।"

मैंने पूछा, "तुम दोनोंने अपराध क्यों स्वीकार किया? एकने मंजूर कर लिया था तो दूसरा चुप रहता ताकि वह बीबी-बच्चोंकी परवरिश तो कर पाता।"

वह बोला, "बाबू! मैं तो गुनहगार था ही, इसलिए भाईको फँसते देख मैं कैसे चुप रहता? मैंने खुद अपना फ़ेल तस्लीम कर लिया ताकि बेक़ुसूर भाई बच जाये। मगर वह न माना, बोला, "जब छोटा भाई फाँसी चढ़ जायेगा तब मैं ही जीकर क्या करूँगा?"

मैंने कहा, "उसे अपनी स्त्रीका तरस न आया, उसके रोकेसे भी न रुका।"

छोटा भाई बोला, "बाबू! औरत तो पराये घरकी होती है, उसके रोकनेसे वह क्या रुकता? भाई फिर भी भाई है। संसारकी सब नेमतें मयस्सर हो सकती हैं, लेकिन सगा भाई कहाँ मिल पाता है? उसके इसी ख़यालने उसे मजबूर कर दिया। बाबू! यह मेरा बड़ा भाई ऐसा शील स्वभाव है कि फ़रिस्तोंमें भी मिलना मुश्किल है।"

अशिक्षित और जंगली भी इतनी भावुकता और जीवनमें प्यार लिये फिरते हैं, यह पहली बार मुझे अनुभव हुआ।

१९५० ई०

सुन्दर हलालख़ोरी

वह जातिकी हलालखोरी (भंगिन) है। आयु ५० के लगभग और नाम है "सुन्दर"। दिल्लीमें रहते हुए मुझे ३० वर्ष हुए, तभीसे वह मुझे जानती है। मुझे बचपनसे देखा है और आयुमें माँके बराबर है, इसलिए वह हमेशा मेरा आधा नाम लेकर बोलती है और वही मुझे अच्छा मालूम होता है और अब जब कभी वह लाड़-प्यार या बड़प्पनके ख़यालसे मेरा पूरा नाम लेती है तो मुझे वह अच्छा मालूम नहीं होता; और मैं क़ह देता हूँ, पहला ही नाम ठीक है, वह हँसने लगती है।

जब छोटा था, तब कहती, "मेरा जुध्या भगवान् करे ख़ूब कमाये।" जब कमाने लगा तो कहने लगी, "मेरे जुध्याका ब्याह हो!" ब्याह हुआ तो बच्चेके लिए दुआएँ माँगने लगी। बच्चा भी हो गया, पर उसकी दुआओंकी सीमा नहीं, बढ़ती ही जा रही हैं।

वह भंगिन है, जिजमानोंकी मंगल-कामना करना उसका काम है। इन्हीं बातोंके एवज़में तो हम लोगोंके यहांसे उनका भरण-पोषण होता है। यह खयाल आम लोगोंका है और कह नहीं सकता, मेरा भी पहले यह खयाल था, या नहीं।

जेल चला गया तो माँके रोज़ानाकी तरह रोटी और माहवारी पैसे देनेपर लेनेसे इनकार कर दिया। माँने कहा, "जी·! तुम अपना मेहन-ताना लो, मुझे कोई वह भूखी-नंगी थोड़े ही छोड़ गया है!" सुन्दर हलाल-खोरी आँखोंमें आँसू भरकर बोली, "वह आयेगा, तब उसीके हाथसे लूँगी।" मेरे हाथसे या माँके हाथसे लेनेकी बात नहीं थी। बात दरअस्ल

उसके मनमें यह थी कि जिसका बेटा जेल चला गया है, उससे मेहनताना लेती क्या अच्छी लगूँगी ?

जेलसे आया, तब माँने सुन्दर हलालखोरीकी बात कही। साथ ही यह भी कहा कि मकान मालिकने (जो अपने जातिके ही थे) तेरे जाते ही किराया बढ़ा दिया था।

मकान-मालिककी बात अनसुनी-सी करके सुन्दर हलालखोरीके इस त्यागकी बात कई बार सुनी। सोचा, मेरे पास क्या है, जो उसे इस मेहरबानीकी एवज़में दे सकूँ।

जो बन सका वह दिया, तो माथेपर तीन बार चढ़ाया, ज़मीनको चुचकारा। दामन फैलाकर दुआएँ दीं और कहा, "मुबारक आजका दिन, जो अपने जुग्याके हाथसे मुझे यह लेहना नसीब हुआ।"

मेरा ब्याह हुआ तो माँने तीहल दी। तीहल लेकर फूली न समायी। पहनकर सारे मुहल्लेको दिखायी, "मेरे जुग्याकी ससुरालसे यह तीहल मेरे वास्ते आयी है।"

जिस मकानमें वह कमाने आती थी, वह मैंने बदल लिया है, फिर भी जब कभी मिल जाती है तो देखकर हरी हो जाती है। मैं सोचता हूँ, इन अछूतोंमें भी इतना त्याग, इतना स्नेह कहाँसे आया ? कहीं हम उच्च कहलानेवालोंके गुण तो इन्होंने नहीं छीन लिये ?

वीर, दिल्ली; ४ मई १९४० ई०

एक चोरकी आत्म-कथा[1]

जवानीका आलम, मदभरी आँखें, चेहरेपर दो चुल्लू खून, सुता हुआ कसरती जिस्म और उसपर पुश्तैनी पेशा चोरी। न कमानेकी फ़िक्र, न नौकरीकी चिन्ता, न घाटेका डर। आठों पहर चैनकी बंसी बजती थी, अल्हड़ जवानी आदमीको भुनगा समझती थी ! काँधेपर लाठी लेकर चलता तो बे पिये दो बोतलका नशा रहता ! जिस घरमें घुस जाता खाली हाथ न लौटता। नाकामयाबी किसे कहते हैं, यह कभी न जाना ! हमारी क़ौमके लोग पुलिसके फन्देमें फँसते तो मैं हँसता और कहता इन गाव-दियोंको हमारी दिलेर क़ौममें पैदा होनेकी ज़रूरत भी क्या थी ?

माँ लाड़से कहती, "मेरे बेटेके तो पाँवसे लच्छमी लगी रहती है, बुज़ुर्गोंकी आन चली आती है इसलिए मजबूरन इधर-उधर जाता है वर्ना दौलतमन्द तो यहाँ आकर इसकी जूतियोंमें दौलत पटक जायें।"

बीबी कहती, "मेरा शौहर तो बादशाह है, यह काम तो तफ़रीहन करता है। बादशाह जंगलोंमें शिकारको जाते हैं, मेरा दूल्हा शहरमें शिकार करता है ! बादशाह और मेरे शौहरमें कुछ फ़र्क़ थोड़े ही है ?"

एक रोज़की बात, चाँद अपने पूरे शबाबपर था। अठखेलियाँ करता हुआ, इश्क़का दम भरता हुआ, सितारोंको गुदगुदाता हुआ, फूलोंको मुसकराता हुआ, बच्चोंको सुखकी नींद सुलाता हुआ, किसीकी दुआएँ लेता हुआ, किसीको तसल्ली देता हुआ और किसीको मचलता हुआ देखकर,

---

१. एक बार रेलमें सफ़र करते हुए मेरे एक साथीकी एक बूढ़े बूचे आदमी-से भेंट हुई। साथीने ताज्जुबसे पूछा, "कहिए हज़रत ! ये कान किसीने उखाड़ लिये हैं या अल्लाहमियाँ बनाते हुए ही भूल गये ?" उस देहाती बूचेने बहुत हील-हुज्जतके बाद जो घटना बयान की, वह ज्यों-की-त्यों केवल अपनी भाषाका जामा पहनाकर पेश कर रहा हूँ। —गोयलीय

किसीको तड़पता हुआ देखकर एक अजीब बाँकपनके साथ वह गुलशने-आसमानपर सैर कर रहा था !

उसकी वोह फबन, वोह निखार, वोह शोखी-भरी चाल मेरे कलेजेमें उतर गयी। हाथमें लाठी ली और चल दिया गाँवसे बाहर चाँदके साथ-साथ। हम चोरोंके लिए अँधेरी रात क़ीमती होती है। चाँदनी रातमें घरसे बाहर नहीं निकलते। इसलिए घरसे चलते वक़्त माँने हैरानीसे देखा, बीवीने आँखों ही आँखोंमें कहा, "क्या आज पिये हुए हो, देखते नहीं चाँदनी छिटकी हुई है, ऐसेमें भी क्या कभी बाहर जाना होता है?" मैंने कहा, "मैं कमायीको थोड़े ही जाता हूँ, यूँ ही ज़रा गाँवके बाहर सैर कर आऊँ, अभी आया ज़रा-सी देरमें।"

एक अँगड़ाई ली और चल दिया गाँवसे बाहर चाँदका खुला रूप जी भरकर देखनेको। वोह सुनसान रात, वोह थकी-माँदी राह, वोह सोया हुआ रेत, वे खड़े हुए पेड़, मुझे आगे बढ़नेसे न रोक रके। मैं आगे बढ़ता ही गया, मैं चुपचाप चलता ही गया। यकायक रास्तेसे ज़रा-सी दूरीपर कुछ देखकर ठिठका और पास जाकर देखा तो हैरान रह गया।

उस सुनसान वीरान मैदानमें एक साफ़-सुथरी जगहमें सफ़ेद चादर बिछाये एक देहाती नौजवान अपनी हसीना बीवीके साथ बेमलाल सोया हुआ था। जैसे शेर अपनी मादाके साथ बेख़ौफ़ लेटा हुआ हो। शायद वह अपनी बीवीको कहीं ले जा रहा था और रास्तेमें रात हो जानेसे बीवीके थक जानेकी वजहसे वहीं आराम करने लगा था।

दिल चाहता था कि इसी तरह उस जोड़ेको देखता रहूँ। इस उघड़ी शराबको आँखोंसे पीता रहूँ। उस हुस्नो-इश्क़की ज़ाहिरा तस्वीरको जी चाहता था, किसीको खबर न होने दूँ और कलेजेमें छिपाकर रख लूँ। वोह अल्हड़ जवानी, वोह बनावटसे दूर देहाती हुस्न और उसपर यह क़यामत कि उस सन्नाटेके आलममें किस शानसे सोये हुए हैं, न किसीका खौफ़, न किसीकी परवाह !

हियेकी ऑंख कब खुलती है ?

जून १९५० के 'निगार' में "जहांगीर एक शिकारीकी हैसियतसे" एक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसमें जहाँगीर बादशाहकी डायरीसे शिकार सम्बन्धी विवरणं उद्धृत किये गये हैं । उस डायरीके दो अंश यहाँ दिये जा रहे हैं । बादशाह ज़हाँगीर लिखता है :

"एक बार मेरे ज़हनमें यह बात आयी कि शुरूसे इस वक़्त तक जितने जानवर मैंने शिकार किये हैं, उनकी फ़ेहरिस्त बनायी जाय । चुनांचे मैंने अखबारनवीसोंको हुक्म दिया और उन्होंने जो फ़ेहरिस्त बनायी, उससे मालूम हुआ कि बारह सालकी उम्रसे आजतक अट्ठाईस हजार पाँच सौ बत्तीस सिर शिकार किये हुए जानवरोंके मेरे सामने पेश किये गये ।"

आगे इन मारे हुए जानवरोंके नामोंकी तालिका दी हुई है, जिसके उद्धरणकी हम आवश्यकता नहीं समझते । अन्तिम आयुमें जहाँगीरने शिकार न खेलनेकी प्रतिज्ञा कर ली थी । वह प्रतिज्ञा क्यों की गयी, इस वाक़येका बयान वह इस प्रकार करता है :

"मेरे बेटे शाहजहाँका महबूब (अत्यन्त चहेता, प्यारा) बेटा 'शुजा' जिसने नूरजहाँबेगमकी आग़ोशमें परवरिश पायी थी, और जो मुझे जानसे ज़्यादा अज़ीज़ (प्रिय) था, बीमार हुआ । बहुत इलाज हुआ, लेकिन कोई फ़ायदा नहीं हुआ तो मैंने बारगाहे-रब्बुल आलमीन (दयालु ईश्वरके दरबार) में दुआ (प्रार्थना) की । उस वक़्त मुझे खयाल आया कि सत्रह साल क़ब्ल मैंने खुदासे अहद (वायदा) किया था कि जब मेरी उम्र पचास से मुमतादज़ हो जायगी तो मैं शिकार छोड़ दूँगा और मैं किसीकी जान न लूँगा । और सोचा कि मुमकिन है इस अहदके पूरा करनेसे शुजा

अच्छा हो जाये। चुनांचे मैंने इसपर अमल किया और शुजा अच्छा हो गया।"

जहाँगीरकी उक्त डायरी पढ़ते हुए मुझे अपने जीवनकी कई घटनाएँ स्मरण हो आयीं। ऊँट जब पहाड़के पाससे गुज़रता है तभी उसे अपनी तुच्छताका आभास होता है। हज़रते-इनसान धन-यौवन, बल-पराक्रम, बुद्धि और सत्ताके अभिमानमें इतना अन्धा हो जाता है कि उचित-अनुचित उसे क़तई नहीं सूझता। जब उसे क़ुदरतकी ओरसे ठोकर लगती है, तभी उसके हियेकी आँखें खुलती हैं।

१

सन् १९३१ के जाड़ोंके दिन थे। मोण्टगुमरी जेलमें मैं भी अन्य सत्याग्रहियोंके साथ बन्दी था। वहाँका जेलर रायसाहब घनश्यामदास अपने अत्याचारों और क्रूर स्वभावके कारण पंजाब भरमें प्रसिद्ध था। क़ैदियोंपर कम्बल डलवाकर उनकी हड्डी-हड्डी तुड़वा देना, गुदामें मिर्चें भरवा देना, गन्दे हौज़में डुबकियाँ लगवा देना, उसका अदना करिश्मा था। उसका आतंक ऐसा था कि बड़े-बड़े जवाँमर्द क़ैदी उसके नामसे काँपते थे। वे दो भाई थे। बड़ा जमनादास मुलतान जेलका और छोटा मोण्टगुमरी जेलका दारोग़ा था। सिक्ख सत्याग्रहियोंपर बड़े भाईने मुलतानमें वह ज़ुल्म किये कि चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गयी। शास्त्रोंमें वर्णित नरकका दारोग़ा उसके समक्ष हेच मालूम होने लगा। आखिर एक घटनासे उसकी आँखें खुलीं।

उसकी माँ अकसर अपने गाँव रहती थी। ग्रामीण रिवाजके अनुसार वह भी शौचादिके लिए खेतोंमें जाया करती थी। बेटेकी करतूतोंसे गाँवमें भी क्षोभ फैलता जा रहा था। देशद्रोहीकी माँसे भी लोग मन-ही-मनमें घृणा करने लगे थे। तभी एक रोज़ किसीने हिकारत-भरे स्वरसे कड़कती हुई आवाज़में कहा, "बुड्ढी! इस टट्टीको उठा ले वर्ना ठीक नहीं होगा।"

इस आवाज़को सुनकर बुढ़ियाकी हालत वैसी ही हुई, जैसी कि जय-जयकारके नारे सुननेके अभ्यस्त नेताओंको स्थिति काले झण्डे दिखानेपर होती है। बुढ़िया रोबीले स्वरमें बोली, "ओरे छोकरे, तू क्या बकता है ?"

"मैं बकता नहीं, हुक्म देता हूँ, अन्यथा यह तेरे मुँहमें भर दी जायेगी। औरत समझकर तुझसे कुछ नहीं कहा जा रहा है। वर्ना जैसे तैंने साँप जने हैं, जी चाहता है तेरा मुँह कुचलकर रख दूँ।"

बुढ़िया मौक़ेकी नजाक़तको समझ गयी। चुपचाप टट्टी अपने आँचलमें बाँधकर वह सीधी मुलतान अपने बेटेके पास पहुँची। ज़ालिम बेटा माँकी इस हालतको देखकर सिहर उठा, और आइन्दा इस तरहके जुल्म न करनेकी प्रतिज्ञा की।

२

छोटे भाईकी हियेकी आँखें खुलनेका माजरा इस प्रकार है : सन् १९३१ के जाड़ोंका सोमवार था। परेडका दिन था। हम सब खड़े हुए थे और जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट मुआयना कर रहा था। मेरी सीटके ठीक सामने सरदार शेरसिंहकी सीट थी। उसके सामनेसे सुपरिण्टेण्डेण्ट और उसका काफ़िला गुज़रा तो वह खड़े होनेके बजाय लेट गया। उसका लेटना था कि हम सबमें बेचैनी फैल गयी, कि लो भई, बैठे-बिठाये नागहानी मुसीबत नाज़िल हुई। हमारे मस्तिष्कमें अभी यह विचार आया ही था कि जेलर फ़ौरन मुड़ा और घबराकर बोला, "देखो-देखो इसको कोई तकलीफ़ मालूम होती है।" देखा तो वह बेहोश था। उसे जल्दीसे हॉस्पिटल भिजवाया गया। हम लोग जेलरके इस अभूतपूर्व सद्व्यवहारसे चकित थे। मगर-मच्छके आँसू सुने थे, देखे नहीं थे कि वह स्वयं ही बोला, "मेरी ज़िन्दगी-में आज यह पहला वाक़या है कि मुझे गुस्सेके बजाय रहम आया। अच्छा हुआ यह कुछ रोज़ पेश्तर बेहोश न हुआ, वर्ना इसकी हड्डियाँ तुड़वा दी गयी होतीं।"

मैं पूछना ही चाहता था कि, "क़िब्ला ! आपकी ज़िन्दगीमें यह यकायक इन्क़िलाब कैसे हुआ !" कि वह खुद ही एक ठण्डी साँस भरकर बोला, "हम दोनों भाइयोंके एक भी बच्चा नहीं है। एक भानजा है उसीको औलादकी तरह पाला-पोसा है। पन्द्रह-बीस रोज़से मियादी बुखारमें मुब्तिला है। हज़ार इलाज कर लिये, लेकिन दिनपर दिन हालत खराब होती जा रहीहै। अब मैं समझ पाया हूँ कि और भी मेरे बच्चेकी तरह बीमार होते होंगे। मेरी तरह और लोगोंको भी सदमा पहुँचता होगा। आप दुआ कीजिए कि मेरा बच्चा अच्छा हो जाये। मैं क़सम खाता हूँ कि अब ता-हयात किसी पर ज़ुल्म न तोड़ूँगा।"

३

इसी जेलमें मेरे सामने इसके डिप्टी जेलरने एक क़ैदीकी गुदामें खूँटा ठोंक दिया था, जिससे उसकी तत्काल मृत्यु हो गयी। राजनैतिक बन्दियोंकी गवाहियाँ देनेपर जब वह बन्दी होकर जेलमें आया तो पाँवोंमें पड़ता था, काली गऊ बनकर क्षमा कर देनेको गिड़गिड़ाता था, परन्तु बन्दी होनेसे पूर्व क़ैदियोंकी खाल उधड़वा देना मामूली बात समझता था।

४

अप्रैल १९४१ की बात है मुझे दिल्लीसे डालमियानगर आये पाँच-सात रोज हुए थे। न नौकरीका कोई निश्चय हुआ था, न रहनेको क्वार्टर ही मिला था। गेस्टहाउसमें ठहरा हुआ मुफ़्ती रोटियाँ तोड़ रहा था। इन दिनों चीनी मिलका सीज़न था। अतः मन बहलावके लिए केन ऑफ़िस जाना शुरू कर दिया था। न मुझे अपने कार्यका पता था न बैठनेके लिए कोई स्थान नियत था। फिर भी सौ-पचास आदमी सलाम करने लगे थे। कुछ बेकार, नौकरी लगवा देनेकी प्रार्थना करते थे। कुछ अस्थायी नौकरीवाले स्थायी नौकरी दिला देनेकी मिन्नतें करते थे। कुछ खासे

पढ़े-लिखे बाबू मुझे सर और हुज़ूर कहकर बोलने लगे थे। इन सब बातों-का परिणाम यह हुआ कि मैं अपनेको 'सर' और 'हुज़ूर' तो नहीं, पर कुछ-न-कुछ समझने ज़रूर लगा। किसीको नमस्तेका जवाब ज़रा-सा सिर हिलाकर, किसीको मुसकराकर, किसीको एक हाथ उठाकर देता और किन्हींको जवाब ही न देता। स्वरमें अधिकारकी-सी बू आने लगी, चाल-में गम्भीरता आ गयी। तभी एक करारी चपत मुँहपर लगी।

जहाँ ईख मिलको जाती है, मैं वहाँसे गुज़र रहा था कि एक आदमी-ने दो गन्ने चूसनेके लिए उठा लिये। मैंने देखते ही कहा, "क्यों बे! तूने यह गन्ने क्यों उठाये?" उसने वे गन्ने गिरा दिये और चलता बना। मैं आठ-दस क़दम आगे बढ़ा हूँगा कि मनने, धिक्कारा, "गोयलीय! पाँच-सात रोज़में ही इतना परिवर्त्तन? क्या हो गया है तुझे?" तत्काल उस आदमीको पुकारकर कहा, "अच्छा अब तो ले जा, आइन्दा ऐसी हरकत न करना।" इस आवाज़में सहृदयताकी नहीं, एक महरबानीकी-सी पुट मिली हुई थी और वह भी अधिकारके मिश्रणके साथ।

उसने फिर वे गन्ने नहीं उठाये और बग़ैर पीछे मुड़े ही वह सीधा चला गया। मैं कुछ झेंपा-सा, कुछ क्लान्त-सा गेस्टहाउस पहुँचा तो वहाँ चप-रासीने तार दिया जिसमें लिखा था:

"चिल्डरन इल, कम इमीजेटली"

दिल्ली पहुँचा तो दोनों लड़के सख्त बीमार मिले। महीने-भरकी दौड़-धूपमें एक बचा, दूसरा चलता हुआ। यह मैं जानता हूँ गन्नेसे इस घटनाका कोई सम्बन्ध नहीं है। तार तो इस घटनासे दो रोज़ पहले चल दिया था और बच्चे एक सप्ताह पूर्व बीमार पड़ चुके थे। पर, न जाने मेरा दिल क्यों यह कहता है कि तेरे वाक्यमें अभिमान न होता और केवल कर्त्तव्यवश तैंने ईख लेनेसे मना किया होता, तो वह भी बच जाता।

१९५० ई०

काजरकी कोठरीमें भी बेदाग़

मियाँ ऊधमसिंह[1] कचहरीमें मुन्शी हैं, और मेरे परम मित्र श्री० सुमत-प्रसाद जैन प्रथम श्रेणीके मजिस्ट्रेटके मातहत होश्यारपुरमें काम करते हैं। एक-सौ बीस रुपये मासिक वेतन पाते हैं। ऐसे पेशेमें होते हुए भी, जो रिश्वत-खोरीके लिए बदनाम है, बल्कि जिसमें रिश्वत लेना और देना नियम-सा बन गया है मियाँ ऊधमसिंहकी ईमानदारी ज़िले-भरमें प्रसिद्ध है। किसीने आजतक उनको एक पैसा रिश्वत लेते नहीं सुना। इसपर तारीफ़ यह कि काममें भी ज़िलेका कोई अहलकार उनका मुक़ाबला नहीं कर सकता। एक दिन शामको अदालत समाप्त होनेपर गवाहोंको सफ़र-खर्च देते समय किसी गवाहने उनका बटुआ उचका लिया। बटुवेमें दो-सौके लगभग रुपये थे। यह रक़म सरकारी जुर्मानेकी वसूलीकी थी और अगले दिन सरकारी खज़ाने-में जमा करानी थी। बटुवेको हरचन्द तलाश किया गया; परन्तु वह न मिलना था, और न मिला। जो आठ-दस गवाह खर्चा ले गये थे, बटुआ निसन्देह उन्हींमें-से एकने चुराया था। मेरे मजिस्ट्रेट मित्रको जब इस घटनाका पता लगा तो उन्हें यह चिन्ता हुई कि उधमसिंह-जैसा ग़रीब आदमी इस सरकारी रक़मको जमा कैसे कर सकेगा! वह बेचारा नागहानी मुसीबत-परेशानीमें फँस जायेगा। मुन्शीजीके स्वाभिमानको चोट न पहुँच जाये, इस भयसे उनकी सहायता भी नहीं की जा सकती थी। आख़िर एक हल सूझ ही गया। वहीं कचहरीमें चार-पाँच ऑफ़िसर्सने आपसमें अपनी जेबों-से दो-सौ रुपये एकत्र किये और मुन्शीजीको इस सहायताका आभास न मिल

---

१. ऊधमसिंहका 'मियाँ' ख़ानदानी लक़ब है।

जाये, इस ख़यालसे ज़ाहिरामें थानेदारको बुलाकर आदेश दिया कि अपराधी-की तुरन्त खोज की जाये । मियाँ ऊधमसिंहको इस आदेशका पता लगा तो हाथ बाँधकर बोले, "हज़ूर, अपना आदेश वापस ले लें । अपराधीकी खोज़ कैसे होगी ? दोष तो उन आठ-दस गवाहोंमें-से शायद एकका होगा, परन्तु पुलिस उन सबको व्यर्थमें तंग करेगी । मैं नहीं चाहता कि मेरे कारण किसीको कष्ट पहुँचे । यह रक़म मैं अपने पाससे सरकारी खज़ानेमें भर दूँगा । यह रुपये मेरे भाग्यके होते तो जाते ही क्यों ?" बहुत ज़ोर देनेपर भी मियाँ ऊधमसिंह पुलिसकी मार्फ़त अपराधीकी खोज करानेके लिए सहमत न हुए । केवल इसलिए दो-सौ रुपयेकी चुपचाप चपत खा ली कि किसी निरपराध मनुष्यपर उनके कारण कहीं कुछ अत्याचार न हो जाये । एकत्र किये गये दो-सौ रुपये लेनेमें भी मुन्शीजी सहमत न हुए, मुसकराकर टाल गये ।

मार्च १९५१ ई०

आत्म-विश्वास

जेलमें मलेरिया बुखार किसीको न आ जाये, इस खयालसे प्रत्येक क़ैदीको जबरन क़ुनैन-मिक्सचर पिलाया जाता था। उन दिनों विलायती दवासे मुझे परहेज़ था। अतः जब वे मेरी ओर आये, तब मैंने दवा पीनेसे क़तई इनकार कर दिया। कुछ लिहाज़ समझिए या आत्म-विश्वास समझिए, सिपाहियोंने मुझे जबरन दवा नहीं पिलायी, किन्तु यह अवश्य कहा कि दवा न पीनेकी सूचना हमें साहब (सुपरिण्टेडेण्ट जेल) को अवश्य देनी होगी और फिर आपपर काफ़ी सख्ती होगी और दवा भी पीनी होगी। सिपाहियोंकी सूचनापर साहब मेरे पास आया और दवा न पीनेका कारण पूछा। मैंने दवा पीनेमें अपनी असमर्थता प्रकट की तो बोला, "यदि बीमार पड़ गये तब ?" मेरे मुँहसे अनायास निकल पड़ा, "यदि बीमार हो जाऊँ तो आप कड़ी-से-कड़ी सज़ा दे सकेंगे।" साहब ऑलराइट कहकर चला गया ? किन्तु सज़ाकी पूरी अवधितक मुझे दवाकी तनिक भी आवश्यकता न पड़ी। बुखार, खाँसी, ज़ुकाम, क़ब्ज़ वग़ैरह मुझे कुछ भी नहीं हुआ। इतने अर्सेमें एक भी तो शिकायत नहीं हुई। जब कि अन्य साथी दो-तीन माहमें ही जेलसे बीमारियोंका पुंज बनकर निकलते थे।

अनेकान्त, दिल्ली; जून १९३९ ई०

घाटेका सौदा

हमारे एक सुपरिचित मिस्टर ज........एक बड़ी कम्पनीमें प्रधान व्यवस्थापकके प्रतिष्ठित पदपर आसीन हैं। अत्यन्त कर्त्तव्यशील, कार्यदक्ष और सज्जन पुरुष हैं। बड़े ठाटसे रहते हैं। पिछले दिनों उनके घरमें चोरी हो गयी। ज़ेवर, नक़द, सब कुछ जाता रहा। अनुमानतः तीस हज़ारका धक्का लगा। उनकी कम्पनीके मालिकको जब इस चोरीका पता लगा तो उसने उन्हें बुलाकर सब वृत्तान्त पूछा। मालिक इनके कामसे हर प्रकारसे प्रसन्न और सन्तुष्ट था। इस भारी नुक़सानको सहन करना इनके लिए अत्यन्त कठिन होगा यह सोचकर मालिकने तीस-हजार रुपयेका चेक काटकर इनके हाथमें थमा दिया और कहा, "मिस्टर ज.... तुम्हारा नुक़सान मैं अपना नुक़सान समझता हूँ। हानिकी पूर्त्ति-स्वरूप यह भेंट तुम मेरी ओरसे स्वीकार करो।" मिस्टर ज...ने चेक लौटाते हुए अतीव विनम्रतासे कहा "श्रीमान्! मैं आपका बहुत आभारी हूँ। चेक जो लौटा रहा हूँ इसे आप मेरी धृष्टता न समझें। मैं जानता हूँ कि इस भारी नुक़सानको आसानीसे बरदाश्त करनेकी क्षमता मुझमें नहीं है, परन्तु मैं घाटेका सौदा करना नहीं चाहता। चेक देनेमें जो अनुग्रह और सहानुभूति आपने मेरे प्रति दरशायी है, उसका मूल्य तीस-हजार रुपयेसे कहीं अधिक है। इस चेकको लेकर मैं उस पूँजीको परिमित करना नहीं चाहता।"

मालिक यह जवाब सुनकर दंग रह गया। इसे संयोग समझो या पुरस्कार, कुछ ही महीनोंमें मिस्टर ज....के वेतन और पदमें आशातीत तरक्क़ी हुई। और अब तो वे स्वयं भी इतने मूल्यके चेक किसीको भेंट करनेकी क्षमता रखते हैं।

मार्च १९५१ ई०

पंचायती सत्कार

दिल्लीके पहाड़ी-धीरज बाज़ारमें एक कहार चाट बेचा करता था। एक रोज़ चार-पाँच वर्षकी आयुका एक लड़का अपने घरसे दो गिन्नियाँ धेले समझकर उठा लाया। एक गिन्नी किसी फेरीवालेको देकर उससे चने लिये और दूसरी गिन्नीकी इस कहारके यहाँसे चाट ली। चाटवाला उस वक़्त घर गया हुआ था। उसके सात-आठ वर्षके लड़केने भी उसे धेला ही समझा। जब चाटवाला आया तो लड़का बोला, "चाचा, यह नया धेला तो हम लेंगे।"

चाटवाला गिन्नी देखकर घबराया, उसने पासके दुकानदारको बुलाकर लड़केसे सब माजरा सुना और गिन्नी उस दुकानदारके पास अमानतन रख दी, ताकि वास्तविक मालिकके पास वह पहुँचा दी जाये, और गिन्नी यथास्थान भेज भी दी गयी। मुझे जब इस घटनाका पता चला तो मैं उस ग़रीब चाटवालेकी इस ईमानदारीसे बहुत प्रभावित हुआ और मैंने यह विवरण पत्रोंमें प्रकाशित करा दिया।

पत्रोंमें छपनेके दो-तीन रोज़ बाद वह चाटवाला मेरे पास आया और कृतज्ञता-भरे स्वरमें बोला, "एक गिन्नीसे हुज़ूर क्या पूरा पड़ता। आपने जो मुझे इज़्ज़त दिलायी है, उसके आगे करोड़ोंकी दौलत हेच है। अख़बारोंमें यह ख़बर छपनेपर हमारी बिरादरीकी पंचायत हुई, जिसमें मुझे बुलाकर शाबाशी दी गयी और कहा गया कि तैंने अपनी जातकी इज़्ज़त बढ़ायी है। हुज़ूर आपकी बदौलत मेरी इतनी इज़्ज़त हुई, आपका किस मुँहसे उपकार मानूँ।"

मैंने कहा, "इतने ग़रीब होते हुए भी जो तुमने आदर्श उपस्थित किया है, उसे जनताके सामने रखना एक लेखकके नाते मेरा फ़र्ज़ था। तुम्हारी ईमानदारी इससे भी ज़्यादा इज़्ज़त पानेकी अधिकारी है।"

फ़रवरी १९५१ ई०

विमल भाई

मेरे एक अत्यन्त स्नेही साथी हैं, जिन्हें कुछ लोग 'खब्ती भाई' कहते हैं, कुछ लोग उन्हें सनकी समझते हैं और कुछ समझदार दोस्तोंका फ़तवा है कि इनके मस्तिष्कका एक पेंच ढोला है।

मेरा इनसे सन् १९२५ से परिचय है। इन पचीस वर्षोंमें समीपसे-समीप रहनेपर भी मुझे इनमें खब्त और सनकका आभास तक नहीं मिला, फिर भी मैं हैरान हूँ कि क्या बालक, क्या युवा, क्या वृद्ध सभी उन्हें खब्ती भाई कहते हैं।

गोरा शरीर, किताबी चेहरा, आँखें बड़ी और रसीली, चौड़ी पेशानी, मझोला क़द, सुडौल कसरती जिस्म, शरीरपर स्वच्छ और धवल खादीकी मोहक पोशाक, चाल-ढालमें मस्ती और स्फूर्ति। एफ़० ए० तक शिक्षा, भले और प्रतिष्ठित घरमें जन्म, बातचीतमें आकर्षण, राष्ट्रीय विचारों और लोकसेवी भावनाओंसे ओतप्रोत। महात्मा गाँधीसे किसीका दिल दुखा हो, परन्तु इनसे असम्भव। फिर भी दोस्तोंके दायरेमें मज़हक़ाखेज़ बने हुए हैं और उसपर तुर्रा यह कि बुरा माननेके बजाय फूलकी तरह खिलते रहते हैं।

एक रोज़ मैं और एक मेरे साहित्यिक मित्र विमल भाईको चर्चा कर रहे थे और उनपर फ़ब्तियाँ कसनेवालोंपर छींटे उड़ा रहे थे कि समीप ही बैठा हुआ उनका ग्यारह-बारह वर्षका छोटा भाई पढ़ते-पढ़ते बेसाख्ता बोला, "हाँ-हाँ वह खब्ती है, सनकी है; मैं शर्त बदकर कहता हूँ।"

अब हमारी क्या सामर्थ्य थी जो बात काटते। एक तो छोटा, दूसरे शर्त बदनेको तैयार। फिर भी हिम्मत बाँधकर पूछ ही बैठे, "हुज़ूरको

उसमें क्या खब्त दिखायी देता है ?"

वह एक अजीब-सा मुँह बनाकर बोला, "एक खब्त। अजी भाई साहब ! वह सिरसे पैर तक खब्त-ही-खब्तसे ढका हुआ है। जिस मुर्दनी-में कुत्ते न झाँके, वहाँ इन्हें देख लीजिए। सुबह-शाम हज़रतके हाथमें ऐरे-ग़ैरे नत्थूख़ैरोंके लिए दवाओंकी शीशियाँ रहती हैं, खुदके पाँवमें साबुत जूतियाँ नहीं और उस रोज़ दुकान बेचकर उस.........नादिहन्दको, जिससे पठान भी तोबा माँग चुके हैं, दो-हज़ार रुपये दे दिये। उस रोज़ स्कूलसे आते हुए यारोंने उन्हें बनानेके ख़यालसे कहा—

"बड़े भाई, आज तो ईखका रस पिलवाओ।" थोड़ी देरमें क्या देखते हैं कि हम आठ-दस साथियोंके लिए ईखके रसके बजाय सन्तरेके रसके गिलास आ रहे हैं। हमने खिलाफ़ तवक़्क़ह देखकर पूछा, "बड़े भाई, यह क्या तकल्लुफ़ ?" फ़रमाया, "आप लोग कब-कब पिलानेको कहते हैं।"

"रस पी चुकनेपर हम सबकी मुश्तर्क़ा राय थी कि विमल भाई खब्ती होनेके साथ-साथ बुद्धू भी हैं।"

लड़केने अपनी बात कुछ इस ढंगसे कही कि मेरे वे साहित्यिक मित्र तपाकसे बोले, "हाँ यार, इनके खब्तका एक ताजा लतीफ़ा तो सुनो,

"पुकार फ़िल्ममें किस क़दर रश है, यह तो तुम्हें मालूम ही है। विमल भाईने भी भीड़में घुसकर चार-पाँच फर्स्ट क्लास टिकिट खरीद लिये। एक तो अपने लिए बाक़ीके परिचित या मुहल्लेके लोगोंके लिए, इस खयालसे कि कोई आये तो परेशान न हो। दर्शकोंकी भीड़ हालमें घुसी जा रही है और विमल हैं कि आनेवाले परिचितोंकी प्रतीक्षामें बाहर सूख रहे हैं; और जब राम-राम करके टिकिटोंसे मुक्ति पायी तो हालमें तिल रखनेको जगह न थी। टिकिट जिन साहबने लिये, उनमें-से किसीने फ़्री पास समझ-कर और किसीने बुरा न मान जायें, इस भयसे टिकिटके दाम नहीं दिये। एक साहबने दाम देनेकी ज़हमत फ़रमाते हुए अठन्नी उनके हाथपर रखो और बोले, "जब हाउस फुल हो गया तो टिकिटके पूरे दाम कैसे ?"

यह लतीफ़ा उन्होंने इस अन्दाज़में बयान किया कि हम लोट-पोट हो गये। रातको सोने लगा तो मुझे विमल भाईकी ऐसी कई बातें स्मरण हो आयीं, जिन्हें मैं अबतक उनकी ख़ूबियाँ तसव्वुर किया करता था। अब जो दुनियाकी ऐनक लगाकर देखता हूँ तो रंग ही दूसरा नज़र आने लगा।

सन् १९३३ की बात है। मुझे ऐतिहासिक अनुसन्धानके लिए अकस्मात् उदयपुर जाना उसी रोज़ आवश्यक हो गया। मार्ग-व्ययके लिए तो रुपये उधार मिल गये, और ठहरने आदिकी सुविधा इतिहास-प्रेमी बलवन्तसिंहजी मेहताके यहाँ हो गयी; परन्तु पहननेके कपड़े मेरे पास क़तई नहीं थे। जेलसे आकर बैठा था। जो कपड़े थे, उनमें-से कुछ धोबीके यहाँ थे, कुछ मैले पड़े थे। स्वच्छ एक भी न था, और उदयपुर जाना उसी रोज़ अत्यन्त आवश्यक था। बड़ी असमंजस और चिन्तामें था कि यकायक विमल भाई आये और बोले, "सुना है आप उदयपुर जा रहे हैं, वहाँ आपको कई रोज़ लगेंगे। मेरे पास फालतू कपड़े तो नहीं हैं, परन्तु आप घरपर दिन-भर रहें तो आपके सब कपड़े धो दूँ।" मजबूरन विमल भाईको कपड़े देने पड़े। शामको धोकर दिये तो इतने स्वच्छ कि धोबी भी देखकर शरमाये।

गत वर्ष गरमीके दिनोंमें आपके यहाँ चोरी हो गयी। जिन बिस्तरोंपर आप आराम फ़रमा रहे थे, उनको छोड़कर नक़द, ज़ेवर, कपड़े, बरतन सब ले गये। लगे हाथ झाड़ू भी दे गये, ताकि सुबह उठकर सिर पीटकर रोनेके अतिरिक्त आपको झाड़ू देनेकी ज़हमत न उठानी पड़े। समाचार सुना तो घबराया हुआ विमल भाईके यहाँ पहुँचा। समझमें नहीं आता था कि इस महँगी और कन्ट्रोलके ज़मानेमें अब कैसे पौन दर्जन फ़ौजका तन ढकेंगे। और हवा-पानीके अलावा क्या खाने-पीनेको देंगे। सान्त्वना देनेके लिए न कोई शब्द सूझते थे, न कोई कमबख़्त शेर ही याद आता था। इसी उधेड़बुनमें मुँह लटकाये पहुँचा तो विमल भाई देखते ही खिल उठे, और मैं

कुछ कहूँ, इससे पहले स्वयं ही बोले,

"भाई, हमारा तो सदैवके संकटसे पीछा छूट गया। यक़ीनन आजसे हमारे बुरे दिन गये और अच्छे दिन आये।"

मैंने समझा कि विपदाका पहाड़ टूट पड़नेसे विक्षिप्त हो गया है। परन्तु वह विक्षिप्त नहीं था, फिर बोला, "भाई, यह परिग्रह ही सब झगड़ोंकी जड़ है, इसीके कारण अनेक क्लेश और बाधाएँ आती हैं। अब सुख-चैन ही सुख-चैन है। रोटियाँ तो खानेको मिलेंगी ही। आधे दर्जन बच्चे हो गये, अब पत्नी ज़ेवर पहनते क्या अच्छी लगती थी? विलायती कपड़ा सब जाता रहा, अब झक मारकर स्वदेशी पहनेगी!" और फिर वही चेहरेपर फूल-सी मुसकराहट।

उठकर चला तो वहाँसे एक साहब साथ और हो लिये। फ़रमाया, "देखा आपने इनका खब्त। लोगोंके घर चोरी होती है तो दहाड़ मारकर रोते हैं और एक आप हैं कि खिल-खिल हँस रहे हैं। गोया चोरी नहीं हुई, लाटरीमें हरामका रुपया हाथ लग गया है। अगर इनका बस चले तो चोरी होनेकी खुशीमें दावत दे दें।"

सान्त्वना प्रकट करनेके लिए तो मुझे कोई शेर याद नहीं आया, उसकी आवश्यकता भी नहीं पड़ी, परन्तु इन साथीकी बकवासपर ग़ालिबका शेर मनमें झूमने लगा,

न लुटता दिन को तो यूँ रात को कब बेख़बर सोता।
रहा खटका न चोरी का दुआ देता हूँ रहज़न को॥

सन् १९३०के असहयोग आन्दोलनमें आपने खद्दरकी दुकान खोली। विमल भाईकी दुकानपर बाहरके व्यापारी तो तब आते, जब परिचित यारोंकी कुछ कमी होती। भीड़ लग गयी, लोग हैरान कि जिसने कभी दुकान नहीं की, वह इस फर्राटेसे क्योंकर बिक्री कर रहा है? घरवाले भी खुश कि चवन्नी न सही, दुअन्नी रुपया भी मुनाफ़ा लिया तो दो-सौ-तीन-सौ रुपयेकी बिक्रीपर पच्चीस-तीस तो कहीं भी नहीं गये। हमने स्वयं

अपनी आँखोंसे आपकी दुकानदारीके जौहर देखे। दुकान ऐसी चली कि दो-तीन माहमें ही पंख निकल आये। माँने अपने तीन-हज़ार रुपये माँगे तो आपने एक हज़ार रुपयेकी उधारकी लिस्ट दे दी और दो हज़ार रुपये एकके नाम ऋण लिखे दिखला दिये।

माँने सिर पीटकर कहा, "तैने उस ना-दिहन्दको दो-हजार क्यों पकड़ा दिये?"

फ़रमाया, "माँ, तू तो बेकारमें घबराती है, उसने मुझे क़सम खाकर दो-हज़ार रुपये जल्दी लौटानेको कहा है। उसे पठान तंग कर रहे थे, इसीसे उसे रुपयेकी ज़रूरत आ पड़ी थी।"

इन अठारह वर्षोंमें जब-जब विमल भाईसे पूछा कि वे रुपये पटे या नहीं। तब-तब आपने बड़े विश्वासके साथ कहा, "भई, रुपये भारमें थोड़े ही है! बेचारा खुद मुसीबतमें है, उससे रुपयेका तक़ाज़ा करना भलमन-साहतमें दाखिल नहीं।"

मैं इन तेईस वर्षोंमें स्वयं निर्णय नहीं कर पाया कि विमल भाई खब्ती हैं या जीवन्मुक्त? क्या पाठक अपनी उपयुक्त सम्मति देंगे।

अनेकान्त, दिल्ली; फ़रवरी १९४८ ई०

भिक्षुक मनोवृत्ति

बहुधा लोगोंके जीवनमें ऐसे अवसर आते हैं कि दिन-भर भूखे-प्यासे रहनेसे पेट अँतड़ियोंसे लग गया है, जीभ तालूसे जा लगी है, ओठोंपर पपड़ियाँ जम गयी हैं, और चलते-चलते पाँव मूसल हो गये हैं। न पासमें एक धेला है, जो चने चबाकर ही ठण्डा पानी पिया जाये, न मंजिले-मक़सूद ही नज़र आती है। पासमें पैसे न होनेकी वजह मुफ़लिसी ही नहीं होती, आकस्मिक घटनाएँ भी होती हैं। कभी जेब कट जाती है, कभी घरसे लेकर न चले और साथियोंने रास्तेसे ही पकड़ लिया और समझा कि अभी वापस आये जाते हैं, मगर रास्तेमें कार फेल हो गयी या ताँगा पलट गया, पैदल चलनेके सिवा कोई चारा नहीं। कभी रेलवे टिकिटके लिए एक-दो पैसेकी कमी रह गयी है, परदेशमें किससे माँगे, कोई जान-पहचानका भी तो दिखायी नहीं देता, कि इस मुसीबतसे निजात मिले। यदि दिखायी दिया भी तो माँगनेकी हिम्मत न हुई, ओठ काँपकर रह गये। घरमें बच्चा बीमार पड़ा है, उसी रोज़ वेतन मिलनेवाला है, मगर डॉक्टरको बुलानेके लिए रुपये फ़ीसको तो कुजा, आफ़िस जानेके लिए इक्केके लिए दो पैसे भी नहीं हैं। और मनमें यह सोच ही रहे हैं कि चलो बच्चेको ही हस्पताल गोदमें ले चला जाये, ऐसे ही नाज़ुक मौक़ेपर कोई साहब आते हैं। शक्लो-शबाहतसे अच्छे-ख़ासे जीवकार और भले मालूम देते हैं। हाथमें चार-पाँच रुपयेकी रेज़गारी भी लिये हुए हैं। कुम्भ-स्नानको जाना है, एक-दो रुपयेकी जो कमी रह गयी है, उसे पूरी करने चले आये हैं और इनकी धज देखिए,—अन्न मुद्दतसे छोड़ रखा है, सिर्फ़ फल-दूधपर गुज़र फ़रमाते हैं, ऐसे संयमीकी सहायता करना आवश्यक है। भान्जीके भातमें दो-हज़ार रुपयेकी कसर रह

गयी है, ऐसे कारे-सवाबमें मदद करना खलाक़ी फ़र्ज़ है। अफ़ीम खानेको पैसे नहीं रहे हैं, अफ़ीम न मिली तो बेचारा जम्हाइयाँ लेते-लेते मर जायेगा, इनसानी जान |बचाना निहायत ज़रूरी है। ऐसे दुखद प्रसंगोंपर बड़ी विचित्र परिस्थिति होती है। खासकर उस अवसरपर जब कि आप, खुद सही मायनोंमें इम्दादके मुस्तहक़ हैं, मगर अपनी वजअदारीकी वजह-से आप किसीपर भी यह राज़ ज़ाहिर नहीं करना चाहते और तभी कोई आपके जाने-पहचाने साहब—किसी जल्सेके लिए, चौबेको भरपेट लड्डू खिलानेके लिए, किसी साधुके मन्दिरका कुँआ बनवानेकी हठ पूरी करनेके लिए, चिड़ीमारके चंगुलसे तोते छुड़ानेके लिए, मुहल्लेमें साँग करानेके लिए, कलकत्ते-बम्बईमें चलनेवाली मज़दूर-हड़तालके लिए, देवीका परसाद बाँटनेके लिए, क़साईके हाथसे लँगड़ी गाय छुड़ानेके लिए—चन्दा माँगने आ जाते हैं। तब कैसी दयनीय परिस्थिति हो जाती है, ना करनेकी हिम्मत नहीं; देनेको कानी कौड़ी नहीं। कभी दिल चाहता है, दीवारसे टकराकर अपना सिर फोड़ लें, कभी जी चाहता है, इन माँगनेवालोंपर टूट पड़ें और जो ये लाये हैं, उसे छीनकर अपना काम चलायें। मगर कुछ नहीं बन पड़ता और एक निरीह, खुदग़रज़, अहंकारी, रूक्षस्वभावी न जानें क्या-क्या लोगोंकी नज़रोंमें बनकर रह जाते हैं। कुछ आप बीती अर्ज़ करता हूँ,

सन् ३२ की दीवाली आयी और चली गयी, न हमारे घरमें चिराग़ जले न मिठाई आयी। इस बातसे हमारे चेहरेपर न शिकन आयी, न दिल-में कोई मलाल, बल्कि हक़ीक़ी मायनोंमें हमें अपनी इस बेबसीपर नाज़ था। क्योंकि यह मुसीबत दैवकी तरफ़से नहीं, हमने खुद ही बुलायी थी। दीवालीसे दो-तीन रोज बाद माँने कहा, "बेटा, मुझे तुझसे कहना याद नहीं रहा, एक आदमी दस-बारह चक्कर लगा चुका है, न नाम बताता है, न काम, न तेरे मिलनेके वक़्तपर आता है, यूँ कई चक्कर काट चुका है।" माँ अपनी बात पूरी भी न कर पायी थी कि बोली, "देख, वही

शायद फिर आवाज़ दे रहा है।"

बाहर जाकर उनका परिचय पूछूँ कि वे स्वयं ही बोले,

"आप ही गोयलीयजी हैं।"

"जी, मुझ़ो खाकसारको गोयलीय कहते हैं।"

"वाह साहब ! आप भी ख़ूब हैं; पचासों चक्कर लगा डाले, तब आप मिले हैं।"

मैं हैरान कि ख्वामःख्वाः झाड़ पिलानेवाले यह साहब आख़िर हैं कौन ? पुलिसवाले यह हो नहीं सकते, उनकी इतनी हिम्मत भी नहीं कि इस तरह पेश आयें, कोई क़र्ज़ माँगनेवाला भी नहीं हो सकता क्योंकि यहाँ यह आलम रहा है कि :

"घर में भूका पड़ रहे दस फ़ाके हो जाँय।
तुलसी भैया बन्धु के कभी न माँगन जाँय॥"

जब तुलसी बाबा भैया-बन्धुसे माँगना वर्जित कर गये हैं, तब ग़ैरोंसे उधार माँगनेकी तो मैं बेवक़ूफ़ी करता ही क्यों ? फिर भी मैंने बड़ी आज़िज़ीसे न मिलनेका अफ़सोस ज़ाहिर करते हुए उनसे ग़रीबख़ानेपर तशरीफ़आवरीका सबब पूछा तो मालूम हुआ कि मेरे साथ जो जेलमें एक वालियंटियर एक-दो माह रहा था, ये उनके भाई हैं। उनकी तन्दुरुस्ती ठीक न होनेकी वजहसे वे शिमले जाना चाहते हैं। लिहाज़ा मुझे उनके पहाड़ी अख़राज़ातके माक़ूल इन्तज़ामात कर देने चाहिए।

मैं तो सुनकर सन्न रह गया। पहले तो यही बड़ी मुश्किलसे समझमें आया कि ये आख़िर ज़िक्र किन साहबका कर रहे हैं। यह जान-पहचान ठीक इसी तरहकी थी, जैसे कहार दिल्लीसे डोली ख़रीदकर ले जायें और लोगोंसे कहें कि पं० नेहरू रिश्तेमें हमारे साढ़ू होते हैं, और कुरेदकर पूछनेपर बतायें कि, "जिस शहरसे पण्डितजी कमला नेहरूका डोला लायें थे, वहींसे हम भी डोली लाये हैं।"

मुझे उसकी इस दीदादिलेरी, बेतकल्लुफ़ी, भीखके टूक और बाज़ार-में डकारवाली शानपर ताव तो बहुत आया, मगर घरपर आया जानकर बल खाकर रह गया और निहायत आजिज़ीसे मजबूरी ज़ाहिर की। न चाहते हुए भी मुफ़लिसीकी रेखा खींची। मगर उसका यक़ीन न आया। "लोग बड़े ख़ुदगरज़ हैं, खुद गुलछर्रे उड़ाते हैं, मगर दूसरोंको छटपटाते देखकर भी नहीं सिहरते।" इसी तरहके भाव व्यक्त करते हुए वे चले गये और मैं अपनी इस बेबसीपर नादिम-सा होकर गड़ा-सा रह गया कि एक वे हैं जो स्वास्थ्य-सुधारने पहाड़ जा रहे हैं और एक हम हैं कि दम उखाड़नेवाली खाँसीके लिए मुलैठी-सत भी नहीं जुटा पा रहे हैं।

कुछ घटनाएँ सन्तोषवृत्तिको भी अर्ज़ करता हूँ,

१९३३ या ३४ की बात है। यमुनामें बाढ़ आ जानेसे निकटवर्ती गाँव बड़ी विपदामें आ गये थे। उन्हें भोजन, वस्त्र, दवा आदिकी अविलम्ब आवश्यकता थी। दिल्लीवाले प्राणपणसे सहायता पहुँचा रहे थे। हमारे इलाक़ेसे भी हज़ारों रुपये एकत्र हुए। हम एक कारमें आवश्यक सामान रखकर नहरके रास्तेमें पड़नेवाले गाँवोंमें गये। वहाँ दवाएँ, वस्त्र आदि बाँटते हुए एक ऐसे गाँवमें गये, जहाँ वर्षासे बहुत हानि नहीं हुई थी और बादमें मालूम हुआ कि यह ब्राह्मणोंका गाँव था। वहाँ गाँववालोंकी सलाह-से यह तय हुआ कि पूरे गाँवके लिए कमसे-कम एक सप्ताहके भोजनका प्रबन्ध फ़ौरन कर देना चाहिए और जबतक स्थिति पूर्व-जैसी न हो जाये, बराबर साप्ताहिक सहायता आती रहनी चाहिए। जन-लेखाका हिसाब लगाया गया तो अस्सी मन गेहूँ फ़ी हफ़्ते बैठता था। गाड़ी यहाँ आकर अटकी कि अस्सी मन गेहूँ दिल्लीसे क्योंकर लाया जाये? कारके आने-जाने-को ही ब-मुश्किल नहर-विभागसे आज्ञा मिली है। इस खतरेमें ट्रक या लारी तो किसी हालतमें भी नहीं पहुँच सकती थी।

हम लोगोंको चिन्तामें पड़े देख, गाँववाले बोले, "दिल्लीसे गेहूँ लानेकी क्या ज़रूरत है। हमारे यहाँ सबके पास गेहूँ भरा पड़ा है, दाम देकर चाहे

जितना खरीद लो।"

हमारी हैरानीकी हद न रही, हमने कहा, "अरे भई, जब तुम्हारे पास ग़ल्ला भरा पड़ा है, तब तुम हमसे नाहक़ क्यों लेना चाहते हो ?"

वे बोले, "वाह साहब, आप जब इतनी दूर चलकर देने आये हैं, तब हम क्यों न लें, आप भी अपने मनमें क्या कहेंगे कि ब्राह्मण होकर दान लेनेसे इनकार किया।" हमने हँसी और आवेशको रोककर कहा, "भई, हम इस वक़्त खैरात करने नहीं आये, अपने भाइयोंकी मदद करने आये हैं। मुसीबतमें इनसान ही इनसानके काम आता है। हम दे रहे हैं, इसीसे दाता नहीं, और जो ज़रूरतमन्द ले रहे हैं, वह मँगते नहीं। यह तो सब मिलकर मुसीबतमें एक-दूसरेका हाथ बटा रहे हैं। इसीलिए गाँवमें जो सचमुच इम्दादके योग्य हो उसे बुला दो, जो हमसे उसकी सहायता बन सकेगी करेंगे।"

गाँववालोंने जिस बुढ़ियाका नाम बताया, उसने मिन्नतें करनेपर भी कुछ नहीं लिया। तब वे गाँववाले स्वयं ही बोले, "आप नाहक़ परेशान होते हैं। इम्दाद लेगा, तो सारा गाँव लेगा, वर्ना कोई न लेगा। अगर आप हमें न देकर, सिर्फ़ एक-दोको देकर चले जायेंगे, तो सारा गाँव इन्हें हलका समझेगा, ताना मारेगा, इसी डरसे ये लोग नहीं लेते हैं और न लेंगे।"

बड़ा जी खराब हुआ, जिन्हें सचमुच सहायताकी ज़रूरत थी, उन्हें भी सहायता न दी जा सकी। लाचार कारमें बैठकर नहरकी पटरी-पटरी दिल्ली-की ओर वापस जा रहे थे कि नहरके किनारे कुछ लोग औरतों-बच्चों-समेत दिखायी दिये तो कार रुकवा ली। पूछनेपर मालूम हुआ कि गाँवमें पानी आ जानेसे यह लोग यहाँ आ गये हैं और ज़्यादातर किसान जाट हैं।

हमने जब इम्दाद देनेकी बात उठायी तो वे लोग बातको टाल गये, दुबारा कहा तो ऐसे चुप हो गये जैसे कुछ सुना ही नहीं। फिर तनिक

ज़ोर देकर कहा तो बोले, "आपकी मेहरबानी, हमें किसी चीज़की दरकार नहीं, भगवान्‌का दिया सब कुछ है।"

उस गाँवकी भिक्षुक मनोवृत्ति देखकर हम जो गाँववालोंके प्रति अपनी राय क़ायम कर चुके थे, वह उड़ती-सी नजर आयी तो हमने अपनी दानवीरताके बड़प्पनके स्वरमें तनिक मधुरता घोलते हुए कहा, "संकोच-की कोई बात नहीं, तुम्हारा जब सब उजड़ गया है, तो यह सामान लेनेमें उज्र किस बातका ? यह तो लाये ही आप लोगोंके लिए हैं।"

हमारी बात उन्हें अच्छी नहीं लगी, शिष्टाचारके नाते उन्होंने कहा तो शायद कुछ नहीं, फिर भी उनके मनोभाव हमसे छिपे नहीं रहे। उन्होंने मौन रहकर ही हमपर प्रकट कर दिया कि जो स्वयं अन्नदाता हैं, वे हाथ क्या पसारेंगे ? फिर भी हमारे मन रखनेको उनमें-से एक बूढ़ा बोला, "लाला, हम सब बड़े मौजमें हैं, अगर कुछ देनेकी समायी है तो उस टीलेपर हमारे गाँवका फ़क़ीर पड़ा हुआ है, उसे जो देना चाहो दे आओ। हम सब अपनी-अपनी गुज़र-बसर कर लेंगे। उसकी इम्दाद हमारे बसकी नहीं।"

आखिर उस फ़क़ीरको ही आटा-वस्त्र देकर अपनी दानशीलताकी खाज मिटायी गयी। कारमें सब साथी मुँह लटकाये दिल्ली वापस जा रहे थे, हम बड़े या ये किसान, शायद इसी समस्याको सब सुलझा रहे थे।

× × ×

डालमियानगरमें सहारनपुरके चौ० कुलवन्तराय जैन रहते थे। पचास-पचपन वर्षकी आयु होगी। ज़ीशऊर, ख़ुशपोश और बड़ी वज़अ्-क़तअके बुज़ुर्ग थे। घरके आसूदा थे, मगर व्यापारमें घाटा आ जानेसे यहाँ सर्विस करके दिन गुज़ार रहे थे। मामूली वेतन और मामूली पोस्टपर काम करते थे। मेरे पास अकसर आया करते और बड़ी तजरुबेकी बातें सुनाया करते थे। निहायत ख़ुशइख़लाक़, बा-मज़ाक़, नेकचलन और क़ायदे-क़रीनेके इनसान थे। उनकी सुहबतमें जितना भी वक़्त सर्फ़ हुआ, पुरलुत्फ़ रहा। हर इनसानको घरेलू परेशानियाँ और नौकरीसम्बन्धी असुविधाएँ

होती हैं, मगर दो-तीन सालके अर्सेमें एक बार भी ज़बानपर न लाये। मिल-क्षेत्रोंमें जहाँ बैठे-बिठाये, लोगोंको उत्पात सूझते रहते हैं। इंक्रीमेण्ट (वार्षिक तरक्क़ी), बोनस (नौकरीके अतिरिक्त वार्षिक भत्ता), डेज़िग-नेशन पद और आफ़िसर्सकी शिकायतें, इन्क़िलाब, मुर्दाबाद और हाय-हायके नारोंसे अच्छे-अच्छोंके आसन और मन हिल जाते हैं। वहाँ उनके चेहरेपर न कभी शिकन दिखायी दी, न ज़बानपर हर्फ़े-शिकायत।

उनका इकलौता लड़का रुड़की कॉलेजमें इंजीनियरिङ्में पढ़ रहा था। शायद अस्सी रुपये मासिक भेजने पड़ते थे। मैं जानता था यह उनके बूतेके बाहर है, उन्हें ब-मुश्किल इतना कुल वेतन मिलता था। अतः मैं समझता था कि या तो धीरे-धीरे बचे-खुचे जेवर सर्फ़ हो रहे हैं या सिरपर ऋण चढ़ रहा है। पूछनेकी हिम्मत भी न होती थी, पूछूँ भी किस मुँहसे ?

आख़िर एक रोज़ जी कड़ा करके मैंने उनसे 'डालमिया, जैन छात्र-वृत्ति' लेनेके लिए कह ही दिया। सुनकर शुक्रिया अदा करके मन्दिरजी चले गये। दूसरे रोज़ घरपर तशरीफ़ लाये और फ़रमाया, "गोयलीयजी, आप मेरे बड़े शुभचिन्तक हैं, यह मैं जानता हूँ। आपने मेरा दिल दुखाने-को नहीं, बल्कि नेकनीयतीसे ही मुझे यह सलाह दी है। आपकी बात टालनेकी हिम्मत न होनेकी वजहसे, मैं उस वक़्त स्वीकृति देकर चला गया। मगर फिर घर जाकर सोचा तो, बात मनमें बैठी नहीं। एक साल रह गया है, जैसे भी होगा निकल ही जायेगा। इस बुढ़ापेमें क्यों ज़रा-सी बातपर ख़ानदानको दाग़ लगाया जाये ? भला लड़का ही अपने मनमें क्या सोचेगा ? भाई गोयलीयजी, मैं छात्रवृत्ति लेकर अपने बच्चेका दिल छोटा हरगिज़ नहीं करूँगा।"

चौधरी साहब इतना स्वाभिमानपूर्ण उत्तर देंगे, अगर मुझे ज़रा भी शक होता तो मैं यह ज़िक्र तक न छेड़ता। मगर अब तो तीर कमानसे निकल चुका था, निशानेपर न लगे तो तीरन्दाज़की ख़ूबी क्या ? मैं तनिक

अधिकारपूर्वक बोला, "चौधरी साहब, आपका साहबज़ादा फ़र्स्टक्लास फ़र्स्ट-आया है, ऐसे होनहारको तो वज़ीफ़ा लेनेका पूरा हक़ है। इसमें संकोच और एहसानकी क्या बात है ? यह तो उसे बतौर इनाम मिलेगा।"

मैंने समझा वार भरपूर बैठा है और चौधरी साहब अब सीधे खड़े नहीं रह सकते। मगर नहीं, उन्होंने वार भी बड़ी ख़ूबीसे काटा और मुझे पटखना भी ऐसा दिया कि चोट भी न लगे और हमलावरकी तारीफ़ करनेको जी भी चाहे।

फ़रमाया, "गोयलीयजी, आपका फ़रमाना बजा है, मगर बेअदबी मुआफ़, यदि होनहार लड़कोंको वज़ीफ़ेके तौरपर मिलता है, तो ग़रीब-अमीर सब लड़कोंको बिना माँगे क्यों नहीं मिलता, सिर्फ़ ग़रीब लड़कोंको ही क्यों मिलता हैं ?"

मेरे पास इसका जवाब नहीं था, क्योंकि मैं जानता था कि असहाय विद्यार्थी भी उच्चसे-उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकें, आर्थिक अभावके कारण उनका विकास न रुक जाये, इसी सद्भावनासे प्रेरित होकर श्रीमान् साहू शान्तिप्रसादजीने छात्रवृत्ति जारी की है।

चौधरी साहब आज संसारमें नहीं हैं, मगर उनकी वज़अ़दारी याद आती रहती है।

अनेकान्त, दिल्ली; मार्च १९४८ ई०

आकस्मिक प्रेरणा
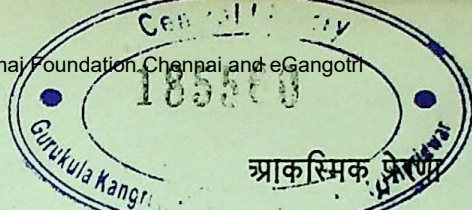
सन् १९२५-२६ ईसवीकी बात होगी। जाड़ोंके दिन थे। मेरे एक मित्र दिल्लीमें ही रहते थे। उनके यहाँ कुछ मेहमान आये हुए थे। उन सबकी इच्छा थी कि मैं भी रातको उन्हींके पास रहूँ। अतः घरपर मैं अपनी माँसे रातको न आनेके लिए कहकर चला गया और मित्रके यहाँ जागरणमें सम्मिलित हो गया, परन्तु रात्रिको दस बजेके क़रीब घर आनेके लिए एकाएक मन व्याकुल होने लगा। मित्रके यहाँ मुझे काफ़ी रोका गया और इस तरह मेरा अकस्मात् चल देना उन्हें बहुत बुरा लगने लगा। मैं भी इस तरह एकाएक जानेका कोई कारण न बता सकनेकी वजहसे अत्यन्त लज्जित हो रहा था, किन्तु उनके बार-बार रोकनेपर भी मुझे वहाँ एक मिनिट भी रहना दूभर हो गया और मैं ज़िद करके चला ही आया। घर आकर माँको दरवाज़ा खोलनेको आवाज़ दी। दरवाज़ा खुलनेपर देखता हूँ कि कमरेमें धुआँ भरा हुआ है और माँके लिहाफ़में आग सुलग रही है। दौड़कर जैसे-तैसे आग बुझायी। पूछनेपर मालूम हुआ कि थोड़ी देर पहले लालटेन जलानेको माचिस जलायी थी, वही बिस्तरेपर गिर गयी और धीरे-धीरे सुलगती रही। यदि दो-चार मिनिटका विलम्ब और हो जाता तो माँ जलकर भस्म हो जाती। साथ ही मकानमें ऊपर तथा बराबरमें रहनेवालोंकी क्या अवस्था होती, कितनी जन-हत्या होती, कितना धन नष्ट होता, यह सब सोचते ही, कलेजा धक-धक करने लगा। उस समय किस आन्तरिक शक्तिने मुझे घर आनेके लिए प्रेरित किया? यह मेरे किसी पूर्व संचित पुण्यका उदय हो समझना चाहिए।

इसी तरहकी आन्तरिक प्रेरणाएँ किसी निकट सम्बन्धीके बीमार पड़नेपर बिना किसी सूचनाके मुझे सुदूरसे कितनी ही बार खींच लायी हैं।

अनेकान्त, दिल्ली; फ़रवरी १९३९ ई०

क जलयान खड़ा है जिसमें छुट्टियों का
मचमाते प्रासाद की तरह लगता है।